www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

साहित्यिक वेब अंक
1 से 30 जून 2026
(मासिक साझा संकलन)

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

साहित्य-सेवा का तीसरा सृजनात्मक पड़ाव

अप्रैल और मई के सफल अंकों के पश्चात् जून का यह अंक भी आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हर्ष और संतोष का अनुभव हो रहा है। यह केवल एक और अंक नहीं, बल्कि साहित्यिक प्रतिबद्धता, निरंतरता और सामूहिक सृजन-यात्रा का तीसरा सशक्त पड़ाव है।

"अन्तरा शब्दशक्ति" वर्ष 2016 से साहित्य सेवा के लिए सक्रिय है तथा वर्ष 2019 से अपनी वेबसाइट के माध्यम से ई-पुस्तकों, ब्लॉग और विविध साहित्यिक सामग्री का नियमित प्रकाशन कर रहा है। इस मंच ने देश-विदेश के वरिष्ठ एवं नवोदित रचनाकारों को समान अवसर प्रदान करते हुए एक सशक्त साहित्यिक परिवार का निर्माण किया है।

कविता, कहानी, लेख, संस्मरण, बाल साहित्य, नवगीत, ग़ज़ल, समीक्षा सहित अनेक साहित्यिक विधाओं का नियमित प्रकाशन, डिजिटल अभिलेखन, पाँच सौ से अधिक पुस्तकों के प्रकाशन एवं संपादन, सोशल मीडिया के माध्यम से साहित्य का सतत प्रचार-प्रसार तथा पाँच विश्व रिकॉर्ड जैसी उपलब्धियाँ इस यात्रा की सार्थकता को प्रमाणित करती हैं। हमारा उद्देश्य केवल रचनाओं का प्रकाशन नहीं, बल्कि हिन्दी साहित्य को आधुनिक डिजिटल माध्यमों के द्वारा जन-जन तक पहुँचाना भी है।

यह अंक उन सभी रचनाकारों को समर्पित है जिनकी लेखनी समाज की संवेदनाओं, विचारों और मानवीय मूल्यों को स्वर देती है। आपके सहयोग, विश्वास और रचनात्मक सहभागिता ने इस अभियान को निरंतर गति प्रदान की है।

> "आइए, हम सब मिलकर साहित्य की इस ज्योति को और अधिक व्यापक बनाएँ तथा हिन्दी भाषा और साहित्य के संरक्षण, संवर्धन और डिजिटल प्रसार के इस अभियान को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाएँ।"

डॉ. प्रीति समकित सुराना 'संपादक'

अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन

1/06/2026 से 30/06/2026 — वेबअंक में प्रकाशित रचनाकारों की सूची।

01.06.2026
1- अविनाश ब्यौहार
2- कृष्ण भारतीय
3- रामकिशन शर्मा
4- रागिनी स्वर्णकारा शर्मा
5- शेरसिंह ढिकवाल

02.06.2026
1- डॉ भारती वर्मा बौड़ाई
2- डॉ संगीता बिंदल
3- मंजू सरावगी "मंजरी"
4- किरण मोर
5- सीता गुप्ता दुर्ग
6- डॉ अमृता शुक्ला

03.06.2026
1- गोपेश दशोरा
2- संजय अश्क़
3- ललिता प्रसाद जोशी
4- बबिता कुमावत
5- डॉ अनुराधा प्रियदर्शनी

04.06.2026
1- सरन घई
2 -दीपाली जैन
3- मुकेश दुबे

05.06.2026
1- सुषमा अग्रवाल
2- अबरार खान
3- डॉ प्रीति समकित सुराना

06.06.2026
1- विशाखा सिंगल
2- निर्मल राय
3- मोहिनी गुप्ता
4- नीता सक्सेना
5- राहुल आर्यन

07.06.2026
1-श्वेता राय
2- उर्मिला माधव
3- नवनीता
4- राधा गोयल

08.06.2026
1- मनोज जैन
2- प्रणव राज
3- अरविंद नायक
4- हरिबल्लभ शर्मा

09.06.2026
1- कमलेश श्रीवास्तव
2- डॉ श्वेता अजल
3- निर्देश निधि
4 -सिया सचदेव

10.06.2026
1- अशोक रावत
2- विजय तिवारी "विजय"
3- मुख्तार अहमद
4- विनीता सिंह "विनी"

11.06.2026
1- शेखर "अस्तित्व "
2- विनीत आशना
3- युसूफ रईस
4- नीर कुमार "निर्मोही"

12.06.2026
1- नमिता गुप्ता "मनसी"
2- सुजाता चक्रवर्ती
3- मंजू सरबगी "मंजरी"

13.06.2026
1- स्मृति गुप्ता
2- गिरीश "नीलांग"
3- नंदिता तनूजा
4- सलीम तन्हा
5- नूतन "प्रयाग रजनी "
6- संजू श्रृंगी
7- नेहा शिव सक्सेना

14.06.2026
1- अली अंसारी अलि
2- मंजुल त्रिवेदी
3- अर्चना जैन
4- अजय पांडेय बेबस
5- संतोष कुमार द्विवेदी

15.06.2026
1- उपेंद्र रघुभामा
2- भाऊ राव महंत
3- गुलशन मेहरा
4- सुभाष पाठक "जिया "
5-अपेक्षा पवन व्यास

16.06.2026
1-सुधीर धीर
2- संदीप नेमा दीप
3- कृष्ण कल्पित
4- डॉ ऋतु शर्मा ननंन पांडे
5- डॉअलका गुप्ता "प्रियदर्शनी'

17.06.2026
1- लीला तिवानी
2-आशीष मोहन
3-अजय श्रीवास्तव मदहोश
4- प्रार्थना राय

18.06.2026
1-प्रीति अज्ञात
2-सपना परिहार
3-राकेश नमित
4-डॉ अमृता शुक्ला
5-बबिता कुमावत

19.06.2026
1- कमल कुमार पांडेय "पथिक"
2- रीतू जाजू
3- कपिल कुमार
4- रविशकर शुक्ल
5 - चौ. मदन मोहन समर
6- लालित्य ललित

20.06.2026
1-जय कृष्ण चांडक "जय"
2- सीए (डॉ) गौतम कोठारी
3- वाई वेद प्रकाश
4- प्रवीणा ठक्कर

21.06.2026
1- वाईवेद प्रकाश
2- डॉ श्वेता अजल
3- डॉ निवेदिता बांदिल
4- हेमंत बोर्डिया
5- मंजू सरावगी मंजरी

22.06.2026
1- मंजू लोढ़ा
2- डॉ राधा दुबे
3- डॉ संगीता बिंदल

23.06.2026
1- डॉ हरविंदर कौर होरा
2- ऊषा प्रदीप नौगरहिया
3- प्रदीप कुमार अरोरा
4- राधा गोयल
5- वीणा खंडेलवाल
6- अदिति रूसिया
7- कीर्ति प्रदीप वर्मा

24.06.2026
1- वंदना सिंह "त्वरित
2- डॉ पल्लवी "गुंजन"
3- आकांशा प्रिया
4- डॉ प्रभात कुमार
5- रश्मि शुक्ल "किरण"

25.06.2026
1- अजय मिश्र
2- मुकेश सिंह "परिंदा"
3- डॉ नीता सुशील अग्रवाल
4- कमलेश कंवल
5- विमल सहगल

26.06.2026
1- नंदिता तनूजा
2- निशा श्रीवास्तव
3- मुकेश दुबे
4- गुलशन प्रेम
5- डॉ प्रीति समकित सुराना

27.06.2026
1- कविता नामदेव
2- डॉ संगीता बिंदल
3- विनय प्रकश जैन
4- नवीन माथुर पंचोली
5- डॉ अमृता शुक्ला

28.06.2026
1- कमल भाष्कर जालंधर
2- अजय पांडेय "बेबस "
3- अनुपमा शर्मा
4- साधना छिरोल्या
5- डॉ मीना कन्नोजिया
6- शन्नो अग्रवाल

29.06.2026
1- पद्मा मिश्रा जमशेदपुर
2- दिलीप आचार्य सोमेश्वर
3- पूनम कतरियार
4- प्रेम सिंह "काव्या"
5- अमितारवि दुबे

30.06.2026
1- सोनम लडीवाला
2- संतोष कुमार द्विवेदी
3- डॉ. भारती वर्मा बौड़ाई
4- बुशरा तबस्सुम
5- आनंद पाण्डेय "केवल"
6- मुकेश सिंह "परिंदा"

रचनाएँ आमंत्रित

"अन्तरा शब्दशक्ति" के आगामी अंकों हेतु आपकी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाओं का हार्दिक स्वागत है।

कृपया रचना भेजते समय निम्न जानकारी अवश्य संलग्न करें–

- रचना का शीर्षक।
- रचनाकार का पूरा नाम।
- रचनाकार का स्पष्ट फोटो।

आपकी श्रेष्ठ एवं मौलिक रचनाओं की प्रतीक्षा रहेगी।

संपादक: डॉ. प्रीति समकित सुराना

रचनाएँ निम्न माध्यमों से भेजें– ई-मेल : antrashabdshakti@gmail.com व्हाट्सऐप : 9009423393

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

मेरी खुशियाँ

मेरी खुशियाँ
मेरी अनमोल पूँजी हैं
जिससे जुड़ा है
मेरा स्वास्थ्य
मेरे सपने और मेरे
घर-परिवार/बच्चों की खुशियाँ,
खुश रहेंगे तो ही
समाज/ देश हित
सोच कर पायेंगे,
इसीलिए खुश रह कर
सपने बुनती हूँ
यह मेरा जन्मसिद्ध अधिकार
कोई जले तो जले
यह उनकी सोच
मैं अपनी सोच के साथ हूँ।

डॉ. भारती वर्मा बौड़ाई

कस्तूरी

तुझमें बसी सुगंध कस्तूरी,
होती कभी क्या स्वानुभूति

पहचान स्वयं को ओ रे अभागे
क्यूं पीछे मन का मृग भागे।

रात सोयें कल हो ना हो,
सुंदर सपने पलकों पर तागे।

बहुत सो लिया वक्त गंवाया
आज अगर ये नींद न जागे।

वक्त की चिड़िया जो उड़ जाए
फिर काहे पछताने लागे।

किस्मत उसकी साथ है देती,
संग वक्त के चलता आगे।

खींचे अपनी ओर ओ मनवा
बंधे हुए हैं मोह के धागे।

किरण मोर
कटनी म.प्र

स्वानुभूति

श्रीमद् भगवद् गीता हमें सिखाती है कि हम केवल यह शरीर नहीं हैं, बल्कि उससे बहुत ऊपर, एक शांत आत्मा हैं। जब हम यह समझ जाते हैं, तो वही 'स्वानुभूति' है।
इसी संदर्भ में कविता:

मन की उलझन छोड़ कर, खुद को जो पहचान ले,
गीता का हर एक शब्द,
वही सही से जान ले।
तू हार में न घबरा,
तू जीत में न फूल जा,
बस अपने 'स्व' को देख,
और दुनिया को भूल जा।
जैसे दीपक का प्रकाश,
अंधेरे को मिटाता है,
वैसे ही ज्ञान,
मन के भ्रम को हटाता है।
तू ही अपना मित्र है,
तू ही अपना राही है,
स्वानुभूति ही है वह रोशनी,
जो सबमें समाई है।

डॉ संगीता बिंदल

पन्ना हिसाब का

राग- विराग तो जीवन की गली में,
धूप- छाँव के जैसे हैं।
जो दुनिया के कृत व्यवहार से,
मन को भीतर छूते हैं।

कभी मानव मन कहकहे लगाता,
कभी रिक्त सा होता है।
कभी सुमन का गलीचे पाता,
कभी काँटों पर वह सोता है

कभी शिखर की ऊँचाई पर,
स्वयं देख खुश होता है।
कभी गहरी स्वानुभूति से!
मन ही मन डर जाता है।

क्या खोया और क्या पाना है,
गुणित हिसाब लगाता है।
राग-विराग की लिए पुस्तिका,
मानव पृष्ठ पलटता है।

सीता गुप्ता दुर्ग,
छत्तीसगढ़

मन का सागर

मन के गहरे सागर में,
जब भावों की लहरें उठती है,
स्वानुभूति की मधुर ज्योति,
जीवन पथ को आलोकित करती है।

यह न किसी पुस्तक का ज्ञान,
न ही दूसरों की वाणी का सार,
यह तो अपने अंतर मन की धड़कन,
अपने जीवन के अनुभवों का संसार।

सुख की किरणें जब खिलती है,
मन में नव उत्साह जगाती हैं।
दु:ख की छाया जब घिरती है,
जीवन का सत्य सिखाती है।

हर संघर्ष,हर छोटी बड़ी जीत,
आत्मबल को नया आकार देती है।
स्वानुभूति की निर्मल धारा,
फिर व्यक्तित्व को विस्तार देती है ।

अपने भीतर झाँक सकें जो,
वे ही जीवन का मर्म समझ पाते हैं।
अनुभव के अनमोल मोती चुन,
ज्ञान की निधि वह पा जाते हैं।

स्वानुभूति वह दीपक है जो,
अंधकार में राह दिखाता है,
अपने सत्य पर विश्वास कर,,,
मानव से मानव को मिलाता है।

मंजू सरावगी 'मंजरी'
रायपुर छत्तीसगढ़

पावन दिन

जब तुम आए मेरे आंगन,
वह दिन था कितना पावन।

कोमल से नन्हे को पाकर,
लगा ईश ने कृपा की माँ पर।

छोटी छोटी उँगलियाँ थाम,
यात्रा कर ली हो चारों धाम।

पास से आती दूध की गंध,
जब लेती थी तुमको चुम्बन।

तेल से मालिश की महक,
अजवाईन धूनी की धहक।

धीरे धीरे घुटनों पर चलना,
खड़े होकर चीज़ें पकड़ना।

फिर धीरे धीरे पग बढाना।
चुपके से बाहर भाग जाना।

शैतानियां करे बहुत सारी,
माँ गुस्साए, पर उसपर वारी।

ये इतने सारे चित्र सजे हैं,
मन के एल्बम में बसे रचे हैं।

छोटे डग से बड़े कदम उठाए,
बना कुछ, सबका मान बढ़ाए।

डॉ. अमृता शुक्ला

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

सुरसा का मुँह

मैं उसके घर सालों बाद आया था। हम दोनों अलग-अलग शहर में रहते थे। मैं उससे मिला। चाय नाश्ता किया। कुछ देर बैठकर गपशप किया। जब जाने को हुआ तो मैं उससे बोला-"मां बापूजी कहां है मैं उनका आशीर्वाद लेता चलूं। मैं जब भी आता था आशीर्वाद लेता था।"
मेरी बात सुनकर वह टाल मटोल करने लगा।
मैं जोर देकर बोला-" बताओ मां बापूजी कहां है।"
वह बड़ी ढिठाई से बोला- "वृद्ध आश्रम में"।
मुझे एक झटका सा लगा। मैं हक्का-बक्का रह गया और मेरे मुंह से अचानक निकल पड़ा - "क्याssss.....।"
उसके चेहरे पर अफसोस का एक चिह्न नहीं था।
मुझसे बैठा न रहा गया और मैं वापस लौट पड़ा। रास्ते में सोचता रहा-जिनने पाला पोसा बड़ा किया। जवान होने पर शादी विवाह किया। नौकरी लगने तक उसे सहारा दिया। उसका परिणाम यह निकला कि वे आज वृद्ध आश्रम में है। यह बड़े शर्म की बात है। ये बात मुझे कुछ हजम नहीं हुई।
उसके ऐसा करने से मां-बाप की भावनाओं को गहरी ठेस लगी होगी। केवल बेबसी ही उन्हें वृद्ध आश्रम ले जा सकती है। ऐसा करना पारिवारिक स्नेह की कमी को उजागर करता है।
वह मुझे दुनिया का सबसे गंदा इंसान लगने लगा था।
उससे दोस्ती क्या उसकी छाया तक से आदमी परहेज करे।
आजकल वृद्ध आश्रम दिन दूनी रात चौगुने बढ़ रहे हैं कि सुरसा भी यह देखकर लज्जित हो जाए।

अविनाश ब्यौहार जबलपुर मप्र

बोलो मेरे राम........!

दिन चिन्तातुर, रात उनींदी-
थकी थकी सी शाम।
कब तक करें गुजारा इनमें-
बोलो! मेरे राम।

जन्मजली ये उम्र कि जैसे-
बिगड़ा हुआ जुकाम।
कब तक करें गुजारा इनमें-
बोलो! मेरे राम।

प्रश्न अपाहिज, उत्तर गूंगे-
समाधान बहरे;
सम्बंधी झीलों के रिश्ते-
मगरमच्छ ठहरे;

जीवन कितना बोझ उठाये-
पीड़ा बहुत घनी;
सुबह शाम दिल में दिमाग में-
रहती तनातनी;

धुंध सोच में, चिन्तन की-
राहों में पूर्ण विराम।
कबतक करें गुजारा इनमें-
बोलो! मेरे राम।

काश कोई झोंका राहत का-
दे जाता आराम!
कब तक करें गुजारा इनमें-
बोलो! मेरे राम।

भले मानसी की कीमत मत-
पूछ, मिली ठेंगा;
छल, प्रपंच, धोखेबाजी का
भाव बहुत महंगा

कृष्ण भारतीय

समझा उसे अपना

समझा है उसको अपना समझता रहूँगा सदा
खैरियत ही हमेशा है चाही चाहता रहूँगा सदा।

लाख बुरा समझे, करे चाहे जितनी भी नफरत
मैंने तो की है मोहब्बत और करता रहूँगा सदा।

उसकी गुस्ताखियों से नहीं मुझे कोई शिकायत
कायम दिल में जगह उसकी रखता रहूँगा सदा।

हरगिज़ न निकलेगी बद्दुआ दिल से उसके लिए
दुआ सांस आखरी तक उसको देता रहूँगा सदा।

मिलती है अगर खुशी उसको करके मुझे रूसवा
उसकी ख़ुशी के लिए ख़ुशी से सहता रहूँगा सदा।

दिल दिया मेरा क्यों तोड़ , मुँह लिया है क्यों मोड़
हुई क्या ऐसी खता, ये तो मैं सोचता रहूँगा सदा।

जख्म जो दिये हैं उसने,समझ लिया तोहफ़ा उन्हें
आभार इनका दिल से अपने जताता रहूँगा सदा।

लोग चाहे जो कहें, उड़ाते फिरें बेशक मेरा मज़ाक
झुकाया सदा सर उसके आगे झुकाता रहूँगा सदा।

न तो है कसूर कोई उसका और न 'शर्मा' का ही है
ठहराया है कसूरवार वक्त को , ठहराता रहूँगा सदा।

रामकिशन शर्मा

मैं एक बूँद हूँ लेकिन समंदर देख लेती हूँ

न जाने ख़्वाब में कैसे ,वो मंज़र देख लेती हूँ
मैं एक बूंद हूँ लेकिन ,समंदर देख लेती हूँ

छुपाने राज़ दिल में वो ,जतन कितने भी कर डाले
नज़र उससे मिले जब- जब, मैं अंदर देख लेती हूँ

आये भी अकेले थे ,अकेले जाना भी होगा
छिपा जो हौंसलें में है ,वो लश्कर देख लेती हूँ

दिखावा दोस्ती का क्यों ,वो करते हैं बढ़ चढ़ कर
छिपे किरदार में उनके ,जो खंज़र देख लेती हूँ

खुशियां गुनगुनाती हैं ,हँसती और हँसाती हैं
मुहब्बत की नज़र से ,जो पलभर देख लेती हूँ

रागिनी स्वर्णकार(शर्मा) इंदौर

वर्ण पिरामिड मां

मां
प्यार
ममता
आकर्षण
स्नेह की धार
आँखों का जादू ही
तो एक मां की मूर्त।

मां
भूखी
प्यासी भी
लुटाती है
अपना प्रेम
अपने लाड़लों
पर नहीं जानें क्यों?

मां
के ही
आँखों में
बसता है
जग का प्यार
लुटाती रहती
अश्रु भावों में बह।

मां
तो मां
आंचल
भी उसका
है मलमल
का गद्दा जहान
आती नींद चैन की ।

शेरसिंह ढ़िकवाल (घायल)
पचेरी बड़ी झुंझुनूं राजस्थान

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

आईना

शीशे पे जमी धूल, हटाने निकला,
कुछ राज मेरे सबको, बताने निकला।

कहता था जो मुझको, हमदर्द हूं तेरा,
मेरा बनकर मुझे ही, मिटाने निकला।

मेरा सहारा लेकर, खड़ा हुआ था जो,
वो सबकी नजरों में, गिराने निकला।

जो खुद मेरे बारे में, कुछ जानता नहीं,
मेरे ही किस्से सबको, सुनाने निकला।

जिन्हें शर्म आती थी, नज़रें मिलाने में,
मुझको ही आईना वो दिखाने निकला।

जिन्हें बोलना मैंने, सिखाया था 'समन्दर',
तहजीब मुझे अब वो, सिखाने निकला।

गोपेश दशोरा, उदयपुर, राजस्थान।

कविता

अब से खुद को सजते नहीं देखा है
किसी संग भी जंचते नहीं देखा है।

आप भला क्या मेरा दर्द समझेंगे
आपने कभी मुझे हंसते नहीं देखा है।

जो छोड़ गया साथ उसे भुला दिया
मैंने जाने वाले के रस्ते नहीं देखा है।

मैंने उसे सियासत करते हुए देखा है
कभी मुझको समझते नहीं देखा है।

मोहब्बत का वायरस हवाओं में है
किसी को इससे बचते नहीं देखा है।

मैंने मोहब्बत उससे रूह से की है
बस नाम किसी ने जपते नहीं देखा है।

संजय 'अश्क' बालाघाट

हस्ताक्षर

बच्चे केवल छोटे हाथ नहीं होते,
वे समय की हथेली पर लिखे हुए
आने वाले कल के हस्ताक्षर होते हैं।

उनकी आँखों में चमकते हैं
वे सपने
जिन्हें अभी शब्द नहीं मिले,
पर जो एक दिन
समाज और राष्ट्र की दिशा तय करेंगे।

जब कोई बच्चा
पहली बार अक्षर पहचानता है,
तब केवल उसका ज्ञान नहीं बढ़ता,
एक नई संभावना जन्म लेती है।

उनकी हँसी में
जीवन का सबसे निर्मल संगीत होता है,
जो थके हुए मन में भी
उम्मीद के दीप जला देता है।

वे प्रश्न पूछते हैं,
बार-बार पूछते हैं,
और हमें याद दिलाते हैं
कि जिज्ञासा ही विकास का पहला कदम है।

उनकी छोटी-सी उड़ान में
अनंत आकाश की कल्पना छिपी होती है,
उनके हर प्रयास में
एक नए युग की आहट सुनाई देती है।

वे हमारी ताकत हैं,
क्योंकि उनके लिए ही
हम संघर्ष करते हैं,
बेहतर समाज का स्वप्न देखते हैं,
और अपने आज को
उनके कल के लिए सँवारते हैं।।

वे हमारी प्रेरणा हैं,
क्योंकि गिरकर उठना
हम उनसे सीखते हैं,
हारकर मुस्कुराना
हम उनसे सीखते हैं,
और हर दिन कुछ नया जानने की इच्छा भी
उन्हीं से पाते हैं।

यदि बच्चों के हाथों में
पुस्तक होगी,
तो भविष्य उजाला होगा

यदि उनके मन में
संस्कार होंगे,
तो समाज संवेदनशील होगा।

यदि उन्हें अवसर मिलेंगे,
तो देश समृद्ध होगा।
आओ, उनके सपनों को
सीमाओं में न बाँधें,
उन्हें विश्वास दें,
उड़ने के लिए खुला आकाश दें।

क्योंकि बच्चे केवल
घरों की रौनक नहीं होते,
वे राष्ट्र की सबसे बड़ी पूँजी होते हैं।

वे ही हमारा भविष्य हैं,
वे ही हमारी ताकत हैं,
वे ही हमारी प्रेरणा हैं,
और उन्हीं से जन्म लेता है
एक सुंदर, मानवीय और आशावान कल।

बबिता कुमावत

कलम थकी नहीं

लिख चुकी हूँ देश में,
गाँवों के गाँव।
गाँव में लिख चुकी हूँ,
शहर जाने की विडंबना।
शहर में लिखती रही,
गाँव से दूर जाने का दुख।
दुख में लिखती रही,
सुख से वंचित होने की दास्तां।
लिखती रही सुख में,
आने वाले दुख की संभावना।
आने वाले कल में,
डुबोती रही अतीत की स्मृतियों को।
स्मृतियों में लिखती रही,
पश्चाताप, आँसू, विरह।
विरह में लिखती रही प्रेम,
प्रेम में लिखती रही आँसुओं को।
आँसुओं में लिखती रही,
भरे हुए सागर-जलाशयों को।
जल में लिखती रही,
स्वच्छ प्रतिबिंब, दर्पण।
दर्पण की दूसरी ओर,
लिखती रही अदृश्य मनुष्य।
और मनुष्य में खोजती रही इंसानियत।

ललितप्रसाद जोशी
छत्रपति संभाजीनगर (महाराष्ट्र)

धरा का ताप

गर्मी का मौसम जब आया ,बढ़ा धरा का ताप।
संकट के बादल ने घेरा, नद सूखे बन भाप।
पैंतालिस हुआ पार पारा, गर्म हवा पदचाप।
निज गलती एहसास हुआ तब,मिटा क्रोध संताप।।

ताल तलैया तुमने पाटे, लालच का विस्तार।
दूर दूर तक फटी बिवाई, धरती की चित्कार।
जंगल तुमने काट दिये हैं, शहर बसाए आज।
भूजल को भी सोख लिया है, आयी कब थी लाज।।

खग पक्षी भी व्याकुल होकर, करते मिले प्रलाप।
दाना पानी खोज रहे हैं, दूर देश को नाप।।
हरे भरे वृक्षों को लगाकर, दूर करो संताप।
कुछ दाने छत आँगन बिखरा, रखना जल भी आप।।

स्वार्थ सिद्ध करने खातिर, भरा घड़े का पाप।
बूँद बूँद जल को जब तरसे, हुआ है पश्चाताप।।
अब भी समय जतन कर लेना,जल जीवन आधार।
वृक्षारोपण से ही संभव, सुखद रहे संसार।।

डॉ अनुराधा प्रियदर्शिनी
(मथुरा, उ॰ प्र॰)

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

इधर-उधर

"इधर-उधर" यूँ तो सामान्य हिंदी शब्द है, जो "यहाँ-वहाँ" या किसी अनिश्चित स्थान के लिए प्रयुक्त होता है। लेकिन इन दो लफ़्ज़ों को मुख्तलिफ़ अंदाज़ में देखा जाए, तो एक साथ लिखे होकर भी इनके दरमियाँ तवील फ़ासला नज़र आता है।

नदी के इधर जो किनारा है, उधर वाले को देखता है, मगर कभी मिल नहीं सकता। या क्षितिज की बात की जाए, तो उस आभासी रेखा पर धरती और आसमान मिलते दिखाई देते हैं, लेकिन सच्चाई यह है कि ऐसा कोई भौतिक स्थान है ही नहीं... धरती इधर है, आसमान उधर...

आज फिर स्मृति की कलम, इधर-उधर के बीच अटक गई। जब भी इस शब्द युग्म पर लिखने बैठती है, खुद इधर रह जाती है और उसकी सोच के घोड़े सरपट दौड़ कर उधर चले जाते हैं, जहाँ एक तन्हा गुलमोहर आज भी रास्ता देख रहा है। वक़्त की शाख़ से टूटे लम्हे अभी तक वहीं बिखरे हैं, गुलमोहर के फूलों की सूखी पंखुड़ियों के साथ।

हवा में आज भी महसूस होती है किसी के पैराहन की सरसराहट और ख़ुशबू।

किसी गर्म हाथ का गुमां होता है अपनी ठंडी, मगर पसीने से तर हथेली पर, और ज्यादा नहीं ठहर पाती वो उस जगह, और डॉयरी के उस पन्ने को मोड़कर बंद कर देती है... अब तो गिनना भी बंद कर दिया है कि किस डॉयरी के कितने पन्ने मुड़े हैं।

सुबह ओ. पी. डी. में मरीजों को देखकर दवा लिखती है। जब किसी नई ज़िन्दगी का रास्ता रोक कर कोख उसे इस दुनिया में आने नहीं देना चाहती, तब ओ. टी. में सधे हुए हाथों से नश्तर चलाकर कटे हिस्से को सिलती भी है।

अनगिनत लोगों से मिलकर उनसे बात करती है, लेकिन लगता है, कोई भी बात उसकी समझ के दायरे में नहीं पहुँचती। कोई जाली बन गई है उसके दिमाग़ के चारों तरफ़, जो इधर से कुछ नहीं जाने देती उधर।

कभी-कभी दर्द की असहनीय लहर को दबाने के लिए दर्द निवारक गोली गटकती है, लेकिन वो भी वहाँ नहीं पहुँचती, जहाँ दर्द मौजूद रहता है।

दिल के किसी अँधेरे कोने में दर्द को सहेजकर कुंडी चढ़ा दी है दरवाज़े पर और एक मजबूत ताला मुँह चिढ़ाता लटका दिखाई देता है...

बॉयज मेडिकल होस्टल की तीसरी मंजिल का कमरा नम्बर 20, वर्षों से उसके बंद दरवाज़े नहीं खुले।

उस दिन भी कहाँ खुले थे। जब वो पहुँची थी वहाँ, अफरा-तफरी का माहौल था। पुलिस इंस्पेक्टर ने हवलदार को स्टूल पर चढ़कर वेंटिलेटर तोड़कर अन्दर देखने का कहा था। वेंटिलेटर के टूटे शीशे से हाथ डालकर दरवाज़े की अन्दर से बंद कुंडी खुली, तो...

चादर का एक सिरा पंखे से बाँधकर दूसरे सिरे को अपनी गर्दन पर कस लिया था शशांक ने और जिस स्टूल पर खड़ा था, उसे पैरों से धका दिया था...

पुलिस वाले कमरे में हर जगह वो काग़ज़ तलाश रहे थे, जिसपर उसने खुद को खत्म करने की वजह लिखी हो, मगर कहीं कुछ नहीं मिला था। किसी पर कोई दोषारोपण नहीं, कोई शिकवा या शिकायत नहीं, कुछ बिखरा था, तो वह थी उसकी बेबसी, हताशा और लगातार तीसरी बार पी. जी. के लिए चयनित विद्यार्थियों की सूची में अपना नाम नहीं होने की वेदना...

शेष चिपका था उसके खुले मुँह से बाहर निकली जुबान और होठों पर दिखाई दे रहे लार और खून के क़तरों में।

कानूनी तफ़्तीश मुकम्मल हुई। लाश को उतारकर फर्श पर लिटा दिया और कई एंगल से फोटो उतारे।

पोस्टमार्टम रिपोर्ट में सुनियोजित आत्महत्या और अगली सुबह अखबारों में हेडलाइन– लगातार असफलता और उससे उपजी कुंठा में जूनियर डॉक्टर शशांक ने आत्महत्या कर ली।

सुसाइड नोट तो नहीं मिला, परन्तु विश्वस्त सूत्रों से पता चला है कि इस घटना में असफल प्रेम भी एक वजह हो सकती है। पुलिस ने मर्ग कायम कर जाँच शुरू कर दी है।

जाँच... कितना खोखला और अस्तित्वविहीन शब्द है यह।

डॉक्टर लिखे काग़ज़ पर या पुलिस केस डॉयरी में, मतलब एक ही होता है– बीमारी और मौत को इलास्टिक की तरह खींचकर लम्बा करना।

सारी मेडिकल बिरादरी पढ़ रही थी सुसाइड नोट। सभी जानते थे, इसबार भी चयन में गड़बड़ी हुई है। शशांक जैसे योग्य उम्मीदवार की जगह किसी अयोग्य को मौका मिला है। दौलत, राजनीति और माफियाओं की त्रिवेणी में ऐसे अनगिनत शव बह रहे हैं। बहते रहेंगे, लेकिन हर जुबान पर ताला है, उस कमरे की तरह।

शर्म आती है डॉक्टर स्मृति को खुद को उस सिस्टम का हिस्सा होने पर, जिसका प्रतिनिधि हार-थककर और टूटकर भी उस दरवाज़े पर सिर पटककर मर गया, जिससे निकला काग़ज़ का पुर्जा भविष्य तय करता है चिकित्सा जगत का। मल्टी विटामिन और हॉर्मोन्स की गोलियां लिखकर मल्टी स्पेशियलिटी अस्पताल और लग्ज़री गाड़ियों के मालिक बन गये उधर, जो नकारा थे, और इधर प्रतिभा दम तोड़ती रही...

कितना फ़र्क़ है इधर और उधर में... इधर ज़मीन पर डॉक्टर स्मृति, शशांक से किया वादा निभा रही है मानवता की सेवा कर, और उधर शशांक सितारा बन देख रहा है उसे। स्मृति के कानों में गूँज उठते हैं उस शाम को कहे वो आखिरी शब्द– "सुमी! तू कभी मत बदलना। जिस कसम को खाकर हमने सेवा का बीड़ा उठाया है, उसे हमेशा याद रखना। जिसे मैं न पा सका, उस मुकाम को हासिल करना..."

शशांक की तस्वीर के सामने भीगी आँखों को पोंछकर विश्वास दिलाती है कि वो आखिरी साँस तक उसकी बात नहीं भूलेगी।

कांपते हाथों से दिये को प्रज्वलित कर बुदबुदाती है, "मैं बिल्कुल ठीक हूँ इधर, तुम भी ख़ुश रहना उधर...!"

मुकेश दुबे
सीहोर, भोपाल (म.प्र.)

नारी, सब पर भारी

नारी, मत कहिये बेचारी,
जगह-जगह पुरुषों को देती नारी मात करारी,
बिगड़े हुए पुरुष को पल भर में वो देत सुधारी।

सदा रही और रहती है नारी तो पुरुष दुलारी,
और पुरुष भी जाता नारी पर नित-नित बलिहारी।

नारी ही है जिसने जग में पुरुष की दशा सुधारी,
करे न जो जन नारी आदर, नरक में जाय बसा री।

पुरुष न समझे जितना नारी समझे दुनियादारी,
जाने क्यों फिर भी वो कहलाती है सदा बेचारी।

नारी गुण की खान, कहो मत अबला और दुखियारी,
'सरन घई' ने मान लिया है नारी सब पर भारी।

सरन घई, संस्थापक-अध्यक्ष,
विश्व हिंदी संस्थान,
कनाडा

हुड़क

दिल बहुत खुश है
होठों पर लगातार तैर रही है
एक मुस्कान
मगर न जाने क्यो
कुछ अधूरा सा है
याद आ रही है , तुम्हारी खुशबू
उंगलियों पर है , तुम्हारा एहसास
चेहरे पर , महसूस हो रही है
तुम्हारी सांस
शायद उठ रही है
तुम्हारी हुड़क
अक्सर उठती है
बहुत बेचैन, बहुत अधीर , बहुत
व्याकुल
तुम्हें पा लेने को आतुर
सुनो!
कुछ पूछना है
क्या कभी तुम्हें भी उठती है
मेरी
हुड़क

दीपाली जैन

मैं लौटना चाहता हूँ

मैं लौटना चाहता हूँ,
ऊँची-ऊँची इमारतों को छोड़कर
मिट्टी की दीवारों वाले
अपने छोटे से आँगन में।

मैं लौटना चाहता हूँ,
प्यूरीफायर की कैद हवा को
छोड़कर
पेड़ों की साँसों से बनी
शीतल, शुद्ध बयार में।

मैं लौटना चाहता हूँ,
धुएँ के गुबारों से दूर
उस खुले आसमान में,
जहाँ चिड़ियों का कलरव
सुबह का आलाप छेड़ता है।

मैं लौटना चाहता हूँ,
वाहनों की बेतहाशा रफ़्तार से हटकर
उन पगडंडी वाले रास्तों में,
जहाँ मेरी साइकिल
धीरे-धीरे गीत गाती है।

मैं लौटना चाहता हूँ,
ठंडी मैसेज-ध्वनि से दूर
चिट्ठियों की गर्माहट में,
जहाँ हर अक्षर
दिल की धड़कन बन जाता है।

मैं लौटना चाहता हूँ,
जहाज़ों और विमानों की आपाधापी से
हटकर
अपनी पुरानी नाव में,
जहाँ चप्पू की ताल
लहरों पर संगीत रचती है।

मैं लौटना चाहता हूँ,
अपने गाँव में—
जहाँ पहली बारिश में मिट्टी की खुशबू
मन को महका देती है।
जहाँ चौपाल पर कहानियाँ
रात भर गूँजती हैं,
और धान की बालियाँ
हवा के संग झूमती हैं।

हाँ,
मैं लौटना चाहता हूँ अपने गाँव में,
क्योंकि वहीं लौटने का अर्थ है—
खुद को फिर से पाना।

अबरार खान,
सागर

हम सुधरें तो पर्यावरण सुधरेगा

एक जग जाहिर कहावत है... हम सुधरेंगे-जग सुधरेगा

बस इसी मूलभूत सिद्धांत के साथ यदि न्याय किया जाए तो कोई कारण नहीं कि.. हमारी वसुंधरा पुनः हरी-भरी होकर स्वर्ग ना बन जाए!!

एक नैसर्गिक मानवीय गुण है कि हम स्वयं भले ही कैसे भी हों पर सामने वाले में सुधार लाने के लिए सदैव उत्सुक व तत्पर रहते हैं! यही सुधार यदि हम स्वयं में कर पाएं तो सारा जहां ही ना सुधर जाएगा??

आज हम किसी को सड़क पर कचरा फेंकते देखकर खुद भी वही करने लगते हैं! देखा-देखी में थैलों और पेपर बैग के बदले पॉलीथीन बैग की मांग करते हैं! भले ही इससे पर्यावरण को कितना भी नुकसान क्यों ना हो! क्यों किसी की बराबरी करना!
नगरपालिका वाले गा-गा कर बता रहें हैं कि कहां कौन सा कूड़ा फेंके। फिर क्यों नहीं हम समझते और सुधरते?

क्यों हम जंगलों की अंधाधुंध कटाई कर कांकरीट के जंगल खड़े कर रहे हैं? नदी नालों, तालाबों का पानी पीने लायक नहीं रह गया है और जलस्तर लगातार नीचे जाते जा रहा है! ग्लोबल वार्मिंग और ओजोन परत की परेशानियां बढ़ती जा रही हैं! क्यों हम नहीं सुधरते? क्यों वृक्षारोपण नहीं करते? क्यों पर्यावरण के मित्र नहीं बनते? क्यों अपने पेड़-पौधों की पूजन, संरक्षण और संवर्धन की परंपरा को भूलते जा रहे हैं?? अपनी संस्कृति और संस्कारों का तिरस्कार कर रहे हैं?
सुधरें हम खुद..

अपने घर और आसपास के वातावरण को सुधारें और लगातार वृक्षारोपण कर उनका संवर्धन करें..
अपनी संस्कृति, संस्कार और नैतिकता का पोषण कर उनका संवर्धन करें..
अपनी जीवन शैली में समय रहते उचित बदलाव करें..
जितना संभव हो गाड़ी पूल करें व चौराहों पर इंजन बंद करें..
धवनि प्रदूषण से परहेज करें..
सोशल मीडिया के अतिरेक से बचें..
ईश्वर ने हमें समस्त योनियों में सर्वश्रेष्ठ मानव योनी प्रदान की है। उसका सम्मान करें..
अपने बल-बुद्धि-विवेक से बालक-वृंद और जन-सामान्य को पर्यावरण के प्रति सजग कीजिए..

फिर देखिए आप स्वयं चारों ओर हरियाली और एक सुकून और आत्मिक शांति का अनुभव करेंगे। आप जब स्वयं में सुधार लाएंगे तो आपको सारा जहान ही साफ-सुथरा हुआ नजर आएगा।

सुषमा अग्रवाल
नागपुर महाराष्ट्र

अपने लिए जिए तो क्या जिए? (भाव पल्लवन)

मनुष्य का जीवन केवल जन्म लेने, बड़े होने, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने और एक दिन इस संसार से विदा हो जाने का नाम नहीं है। यदि जीवन का अर्थ केवल स्वयं तक सीमित रह जाए, तो फिर मनुष्य और अन्य प्राणियों के जीवन में बहुत अधिक अंतर नहीं रह जाता। मनुष्य को विशिष्ट बनाती है उसकी संवेदनशीलता, उसका करुणामय हृदय और दूसरों के सुख-दुःख को महसूस करने की क्षमता। यही कारण है कि जब भी यह पंक्ति सुनाई देती है- "अपने लिए जिए तो क्या जिए?", तो मन सहज ही जीवन के व्यापक अर्थों पर विचार करने लगता है।

सच तो यह है कि केवल अपने लिए जीना बहुत सरल है। अपनी इच्छाओं, अपने सुखों और अपनी सफलताओं के लिए हर कोई प्रयास करता है। लेकिन किसी दूसरे के चेहरे पर मुस्कान लाने के लिए अपने हिस्से का समय, श्रम, स्नेह या सुविधा समर्पित कर देना हर किसी के बस की बात नहीं होती। यही त्याग मनुष्य को महान बनाता है। माँ अपने बच्चे के लिए रात भर जागती है, पिता अपनी इच्छाओं को पीछे रखकर परिवार का भविष्य संवारता है, शिक्षक अपने विद्यार्थियों के व्यक्तित्व को गढ़ता है, सैनिक सीमा पर अपने प्राणों की बाज़ी लगाता है। ये सभी अपने लिए नहीं, बल्कि दूसरों के लिए जीने का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

प्रकृति भी हमें यही संदेश देती है। वृक्ष अपने फल स्वयं नहीं खाते, नदियाँ अपना जल स्वयं नहीं पीतीं, सूर्य अपने प्रकाश को अपने तक सीमित नहीं रखता। उनका अस्तित्व ही दूसरों के कल्याण में निहित है। शायद इसी कारण संसार में वही लोग लंबे समय तक याद रखे जाते हैं, जिन्होंने अपने जीवन को केवल स्वयं तक सीमित नहीं रहने दिया। उनका जीवन दूसरों के लिए आशा, प्रेरणा और सहारा बन गया।

किन्तु जीवन का एक दूसरा पक्ष भी है, जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। दूसरों के लिए जीने की भावना जितनी आवश्यक है, उतना ही आवश्यक स्वयं के प्रति उत्तरदायी होना भी है। यदि कोई व्यक्ति स्वयं ही मानसिक, शारीरिक या आर्थिक रूप से असंतुलित हो जाए, तो वह दूसरों का सहारा कैसे बनेगा? जो दीपक स्वयं बुझ चुका हो, वह किसी और को प्रकाश नहीं दे सकता। इसलिए अपने लिए जीना स्वार्थ नहीं, बल्कि जीवन की एक आवश्यक शर्त है। अपनी खुशियों, अपने स्वास्थ्य, अपने सपनों और अपने आत्मसम्मान का ध्यान रखना भी उतना ही महत्वपूर्ण है।

समस्या तब उत्पन्न होती है, जब जीवन का केन्द्र केवल "मैं" बन जाता है। जब व्यक्ति की संवेदनाएँ केवल अपने लाभ और हानि तक सीमित रह जाती हैं। ऐसा जीवन बाहर से भले ही सम्पन्न दिखाई दे, भीतर से अक्सर रिक्त होता है। दूसरी ओर, जो व्यक्ति केवल दूसरों के लिए जीते-जीते स्वयं को ही भुला देता है, वह भी एक दिन थकान और उपेक्षा का अनुभव कर सकता है। इसलिए जीवन का वास्तविक सौंदर्य संतुलन में है।

मनुष्य को इतना अपने लिए अवश्य जीना चाहिए कि वह आत्मनिर्भर, प्रसन्न और सशक्त बना रहे; और इतना दूसरों के लिए भी कि उसके होने से किसी के जीवन में उजाला आ सके। अपने सपनों को भी स्थान मिले और दूसरों की पीड़ा के लिए भी हृदय में जगह बनी रहे। यही संतुलन जीवन को अर्थवान बनाता है।

आज के समय में, जब भौतिक उपलब्धियों को ही सफलता का पर्याय माना जाने लगा है, तब यह पंक्ति और अधिक प्रासंगिक हो उठती है। धन, पद और प्रतिष्ठा जीवन को सुविधाएँ तो दे सकते हैं, पर आत्मिक संतोष नहीं। वह संतोष तब मिलता है, जब किसी की सहायता करने के बाद उसके चेहरे पर कृतज्ञता की मुस्कान दिखाई देती है, जब किसी निराश व्यक्ति को हमारे शब्दों से आशा मिलती है, या जब हमारे कारण किसी का जीवन थोड़ा बेहतर बन पाता है।

अंततः जीवन की सार्थकता केवल इस बात में नहीं है कि हमने कितना पाया, बल्कि इस बात में भी है कि हमने कितना बाँटा। हमारे जाने के बाद लोग हमारे बैंक खाते, पद या वैभव को नहीं, बल्कि हमारे व्यवहार, हमारे प्रेम, हमारी संवेदनाओं और हमारे द्वारा किए गए सद्कार्यों को याद रखते हैं। इसलिए अपने लिए जीना आवश्यक है, पर केवल अपने लिए जीना पर्याप्त नहीं।

सचमुच, जीवन तब पूर्ण होता है जब उसमें स्वयं के लिए भी स्थान हो और समस्त मानवता के लिए भी। क्योंकि मनुष्य की सबसे बड़ी पहचान उसका अस्तित्व नहीं, उसकी संवेदना है; और वही संवेदना जीवन को साधारण से असाधारण बना देती है।

डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म. प्र.)

पिता

माँ -पिता पालनहार है जग के
त्याग पिता का छिपता नही किसी से।

संघर्ष खुद कर, फल देते परिवार को
प्रत्येक प्रत्यन से सुख देते अपने घर को।

तपती धूप में कड़ी मेहनत कर काम पर जाते है अपने
खून पसीना एक कर सपने सभी के पूरे करते है।

बच्चों को अक्षर- अक्षर पढ़ना है सिखाते
आत्मनिर्भर तब बनना उन्हें सिखाते ।

जीवन के अनुभवों से अवगत उन्हें कराते
उतार चढ़ाव में भी आगे बढ़ना सिखाते।

पल-पल हर क्षण को संजोते
हौंसला उन क्षणों से लेते।

आंसूं छुपा अपने, मुख पर सदा हंसी वो रखते
गम का साया आया ना देते परिवार को खुश सदा वो रखते।

विशाखा सिंघल

अपेक्षा

मुझे इतना कुछ नहीं चाहिए था
बस एक खाट
कुछ छोटा सा काम
कागज कलम और ठंडा आसमान
बस इतना ही चाहिए था
बाकी सब तुम्हारा है
मैं तो बस
धूल में खड़ा हूं।

और अर्थहीन नहीं हो
ये उससे बेहतर है।

अच्छा है जो कुछ भी प्रिय है,
उसे छीन लो चाहे तो
प्रेम और नफ़रत को छीन लो
यह मैं हूं आयुष्मान।

तुम संधिमन का चेहरा छीन लो
सौन्दर्य का प्रेम इंद्रियों
इच्छा शरीर
मुझे जीवन भर
के लिए जला दो।

विनाश और विनाश
अनेक विनाशें के अंत में
पुनः इस विनाश
मेरा सीधा सामना होता है।

निर्मल राय, तिल बाड़ी, पोस्ट- विष्णुपुर, जिला- बांकुड़ा

सरताज

दिल के सरताज बनोगे क्या!
मेरे हमराज़ बनोगे क्या!

मेरे चेहरे पर छाई हर,
रौनक का ताज बनोगे क्या!

बीते कल की बात न जानूँ,
मेरा तुम आज बनोगे क्या!

दिल मेरा अब उड़ना चाहे,
बोलो परवाज़ बनोगे क्या!

गीत अगर जब कोई गाऊँ,
ऐसे में साज बनोगे क्या!!

मोहिनी गुप्ता

यादें

सीप में खनकते
यादों के मोती
फूलो में महकती
यादो की ख़ुशबू
अक्सर थाम लेती हैं
वक्त के लम्हों को,..

चलते चलते कदम भी
कुछ पल के लिए
ठहर जाते हैं,..
मगर इन लहरों का क्या
जो समेट लेना चाहती हैं
साहिल पर ठहरी यादों को,..

उनके आगोश में
इससे पहले
कि लहरें यादों को छू सके
कदम नये सफ़र पर
चल देते हैं,
उनके निशान छोड़ कर ...।

नीता सक्सेना भोपाल

इंतज़ार

बहुत बाते हैं.
जो मुझे लिखनी हैं, कहनी हैं,
बोलनी है, बतानी है..

कभी वक्त नही होता है,
कभी शब्द नहीं होते है,
कभी हिम्मत नही होती
तो कभी मन नही होता है.

मैं शांत हूँ
मगर बेहद अशांत हूँ,
इन्तजार में हूँ
सभी कुछ मेरे पक्ष में आने
के लिए...

राहुल आर्यन

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

पलछिन

कुछ क्षणों की प्रतीक्षा में
निरंतर बीतते जा रहे हैं
दिन रात
जबकि क्षणों का ही अंबार है जीवन

हमने मन को चाहा तो मस्तिष्क ने लगाई बेड़ियां
मस्तिष्क को माना तो मन बंद हो गया सौ तालों में

कभी बैठा ही नही ताल मेल कि जी लेते जी भर

कर लेते मन की
सुन लेते मस्तिष्क की

अब तो चलने चलाने की बेला में
क्या बसंत
क्या पतझड़

स्वंय को ठगना है और धीरे धीरे पगना है.....

(अकेलेपन का राग)

श्वेता राय

दुहाई

जब मुझे तेरी याद आई है,
मैंने ग़म से निजात पाई है,

मेरी आँखों में कितने छाले हैं,
इक यही बात बस छुपाई है,

मेरी आहों में तू ही तू है पर,
अपनी दुनिया कहाँ दिखाई है,

लोग पागल करार करते हैं,
मेरी जो तुझसे आशनाई है,

इतना आसां नहीं है, ख़ुद होना,
ज़िन्दगी भर की ये कमाई है,

हंसने वालों में तू नहीं शामिल,
लौट अइयो, तुझे दुहाई है।

उर्मिला माधव

मौन की चादर

मौन की चादर ओढ़े मैं
खोई - खोई सी रहती हूँ।
अक्सर आशंकाओं चिंता के गहराते
स्याह काले बादलों से घिरी रहती हूँ।
और बरखा बन कर बरसती आँखों से देखती हूँ।
धुंधला सा भविष्य..
वर्तमान को साथ लेकर।
जैसे -जैसे पीड़ा से भरी छलकती
मन की गागर रिक्त होने लगती है।
एक सुखद सी अनुभूति।
मुझे वर्तमान की चौखट पर आकर थाम लेती है।
फिर साँझ ढ़ले ,राह तकते तुम्हारी।
आशाओं, उम्मीदों ,हौसलों के
दीप जलाए तट पर बैठे देखती हूँ।
मैं दूर तक निश्छल शांत बहती सरिता को।
एक दीप हाथ में लिए ..
मन के अंधियारे से पल- पल संघर्ष करते..
हाँ बस एक तुम ही नज़र आते हो।
मुझे दीपक की हर एक लौ में..
और मुस्कुराते कहते हो मुझ से
में हूँ न !
फिर हौले से मेरा..
हाथ थामे..
ले जाते हो तुम मुझे
निराशा के गहरे सागर से पार।
एक हसीन जहां में।

नवनीता
कटकवार शुक्ला

जिंदगी कठिन है

'जिंदगी कठिन है' एक महान सत्य है, क्योंकि जब हम सचमुच इस सत्य को जान लेते हैं तो उससे पार हो जाते हैं। जब हम वाकई जान लेते हैं कि जिंदगी कठिन है, उसे अच्छी तरह समझ लेते हैं, स्वीकार कर लेते हैं तो फिर जीवन कठिन नहीं रहता।

अधिकांश लोग इस सत्य को नहीं देख पाते या देखना नहीं चाहते कि जिंदगी कठिन है। इसके बदले वे संताप करते रहते हैं कि उनकी जिंदगी में समस्याएं ही समस्याएं हैं। वे उनकी विकरालता, उनके बोझ की ही शिकायत करते रहते हैं। परिवार में, मित्रों में इसी बात का रोना रोते रहते हैं कि उनकी समस्याएं कितनी पेचीदी, कितनी दुःखदायक है और उनकी दृष्टि में ये समस्याएं न होती तो उनका जीवन कितना सुखद और आसान होता। उनके लिए ये समस्याएं उनकी अपनी करनी का फल नहीं, वे उन पर औरों के द्वारा थोपे गए अभिशाप हैं। हमारा जीवन दुखी और कठिन इसलिए है कि समस्याओं का सामना करना, उन्हें सुलझाना एक हमारे लिए पीड़ादायक और कष्टकारक प्रक्रिया है।

समस्याएं हमारे साथ क्या करती हैं? वे अपने स्वरूप के अनुसार या उनके प्रति हमारी अपनी दृष्टि के अनुसार, हमारे मन में कभी निराशा, कभी हताशा, कभी एकाकीपन-अकेलेपन का भाव भरती है। कभी वे हममें व्यथा को जन्म देती हैं और कभी अपराध-बोध की भावना को या फिर कभी खेद को, कभी क्रोध को, कभी भय और कभी एक पराभूत मनःस्थिति को। और विभिन्न प्रसंगों, घटनाओं, संघर्षों या मतभेदों के कारण जन्मी इसी पीड़ा को सामान्यतः हम समस्या मानते हैं।

जिन्दगी केवल फूलों भरा रास्ता नहीं है। जिंदगी में समस्याएँ भी हैं। जिंदगी काँटों भरी भी हो सकती है और फूलों से भरी भी हो सकती है। जीवन में पग पग पर चुनौतियाँ आएंगी। इन्हीं समस्याओं रूपी चुनौतियों का सामना करने, उन्हें सुलझाने में जीवन का उसका अपना अर्थ छिपा हुआ है। समस्याएँ तो एक दुधारी तलवार होती हैं। समस्याएँ हमारे साहस, हमारी बुद्धिमता को ललकारती हैं और दूसरे शब्दों में वे हम में साहस और बुद्धिमानी का सृजन भी करती है। मनुष्य की तमाम प्रगति, उसकी सारी उपलब्धियों के मूल में समस्याएँ ही हैं। यदि जीवन में समस्याएँ न हों तो शायद हमारा जीवन नीरस ही नहीं, जड़ भी हो जाता। प्रख्यात लेखक फ्रेंकलिन ने सही ही कहा था- "जो बात हमें पीड़ा पहुँचाती हैं, वही हमें सिखाती भी है।" और इसलिए समझदार लोग समस्याओं से डरते नहीं। उनसे दूर नहीं भागते, बल्कि वे समस्याओं के प्रति भी सकारात्मक नजरिया विकसित करते हैं।

राधा गोयल
विकासपुरी,दिल्ली

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
सोमवार, 8 जून 2026

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

दिवस पर्यावरण वाला

दिवस पर्यावरण वाला
इस तरह हमने मनाया।

चार छह तस्वीर खींची
सेल्फी ली पेड़ की।
फेक तस्वीरें दिखा कर
नग्न सच से छेड़ की।

एक चेहरा नोंच फेंका
दूसरा फिर से लगाया।

एक पौधा नाम माँ के
रोपकर उत्सव मनाते।
खाद पानी छाँव देकर
प्राण तुम उसके बचाते।

दरअसल वह मर चुका पर
फेसबुक लहलहाया।

इन्स्टा से ट्विटर तक
तस्वीर फिर साझा हुई।
व्यक्ति जिसमें लग रहा है
एक दम से जादुई।

दिवस असली चित्र नकली
फेसबुक पर घूम आया।

मनोज जैन

सहनशील धरा

पीड़ा को झेलने वाली,
बदले में खूबसूरती देने वाली,
आपदा के वक्त,
अशांत हो जाती है,
परंतु वापस हरियाली देने वाली,
खुद के नष्ट होने पर भी,
नवजीवन देने वाली,
इस धरा पर हम रहते हैं,
सालों सालों हमारे दिए,
यातनाओं को झेलने के बाद भी,
हमें जीवन देने वाली,
इस धरा को नमन है,
वो धरा जहां आसमान और गहन है,
पीने को पानी, खाने को फल,
इसकी भी तो सहनशीलता,
खत्म होगी आज नहीं तो कल।

प्रणव राज,
बिहार

ग़ज़ल

आपसी रिश्तों में हैं छल-छंद कितने।
एक तरफा भी चलें सम्बन्ध कितने।

मित्रता के मध्य भी मतलब परस्ती,
टूटते हैं स्वार्थवश अनुबंध कितने।

कौन रखता याद पन्ना धाय को अब,
मान पाते मीर तो जयचंद कितने।

थाम लेते हैं प्रगति गति देशद्रोही,
रोज सड़कें जाम, हिंसा, बन्द कितने।

है नहीं परवाह भी कानून की अब,
कुछ अराजक तत्व हैं स्वच्छंद कितने।

मीनवत सड़ कर प्रदूषित जल करें जो,
स्वच्छ सर में कर रहे दुर्गंध कितने।

कह न पाये 'हरि' ग़ज़ल में पीर जन की,
तुम कहो शायर भरोसेमंद कितने।

हरिवल्लभ शर्मा
'हरि'

मंजिल

आज खिली धूप में, बाग लहलहाया है
फूलों और कलियों पर, भंवरा मंडराया है

वो छत पर आए हैं, गेसू बिखराए हुए
आफ़ताब फ़ीका हुआ, देखकर शर्माया है

बागवां गाफ़िल है, चंपा चमेली देख
पूछ रहा शर्माता, खुशबू में नहाया है

गुलाबों के गुंचे यूं, इठलाते शर्माते से
कल होगा तू भी गुल, वक्त तेरा आया है

'नायक' मंजिल तेरी, आ ही गई आख़िर में
इंतज़ार उसका था, मिलने वो आया है!

अरविन्द नायक

नवगीत

धूप बीनती आँखें तेरी,
छाँव भरा काजल।
फैला मीलों दूर अम्बरी,
केशों का जंगल।

पीत वसन ओढ़ा तुमने या,
अमलताश फूले,
अधरों के मादक झूले में,
श्वेत हँसी झूले,

बिखर बिखर जाए साँसों में,
रचा-बसा संदल।

केसर घुली जुन्हाई में,
जब रूप-कलश छलका,
लाल हुआ मुखड़ा,
शिखरों से चीर चपल ढलका,

कानों में धरती के फूँके,
गीत ग़ज़ल पायल।

कमलेश श्रीवास्तव

“सब भिजवा दो”

मेरी हँसी के वो टुकड़े,
जो तुम्हारी बातों में खो गए थे,
मेरे सपनों की वो किरचें,
जो तुम्हारी बेवफ़ाई से बिखर गईं।

लौटा दो वो शामें,
जो तुम्हारे इंतज़ार में गुज़र गईं,
और वो उम्र भी,
जो तुम्हें अपना समझकर दे दी थी।

बस एक चीज़ अपने पास ही रखना
वो झूठा प्रेम।
क्योंकि उसे पहचानने में
मैंने अपना सब कुछ खो दिया है।

डॉ श्वेता अज़ल

‘बरगद’

सुनो लकड़हारे ,
हमारे पोखर वाले खेत के मुहाने पर,
ये जो बरगद वाला पेड़ है न!
ये सुनाता है किस्से, कहता है कहानियाँ!
हमारे दादा परदादाओं की ।

कई बार मेरे सपने में आता है कोई झुकी कमर वाला बूढ़ा,
और कहता है
ये बरगद नहीं, वंश वृक्ष है
आदमी जीते हैं और मर जाते हैं,
ये जीवित रहता है, पीढ़ी दर पीढ़ी!

इसे कभी हमारे बुज़ुर्गों ने सौंपी थी बुज़ुर्गियत,
पहनाई थी पगड़ी,
खड़ा है इसीलिए, हनुमान सा चिरजीवी!

सुनो लकहारे तुम
तुम इसकी जड़ें तो क्या,
टहनियाँ भी मत छूना,
इनमें रात भर समेटता है, निशाचारी चाँदनी की ठंडक,
बुरकता है दुपहरी भर थोड़ी-थोड़ी
थके मांदे राहगीरों की तपती-झुलसती काया पर, करीने से!

सुनो लकड़हारे
तुम उसकी टहनियाँ तो क्या,
पत्तियों को भी मत छूना,
ये बजकर खरताल सी, सुर साधकर साथ समीरों के,
सुनाती है मंद-मंद लोरियाँ, गाती हैं दीपक राग,
हर नई सुबह करती हैं सिंगार,
लेकर उषा से ढेर सारी लालिमा!

सुनो लकड़हारे
तुम इसकी पत्तियाँ तो क्या,
इसकी हवाओं तक को मत छूना,
जिन्हें ये दिन भर ठहराता है सबकी उखड़ती साँसों में,
अंधेरी रात के बिछौने से रात भर बीनता है कालिमा,
बुनकर कालीन बिछा देता है दिनभर के लिए!

बना छोड़ी है सराय इसने अपनी घनी छाँव तले,
बाबुल के घर लौटतीं गाँव की बेटियों के सिर पर,
पिता के आशीर्वाद सा, सेवल को खड़ा रहता है

बालकों को पुचकारता,
बूढ़ों के सुर में सुर साधता,
यौवन के सुरमई सपनों का, ज्वार-भाटों से भरा समंदर ये,
पशु और परिंदों का, चेतन
और उनींदों का बाल सखा जो है

साथ खड़ी पोखर के सीने पर चढ़ा रहता है,
हँसी-ठिठोली का रिश्ता जो जोड़ रखा है
जब देखो तब, आँख बचाकर उसके धुले-पुँछे आँचल पर,
अपनी बेकार हुई पत्तियाँ ठेल देता है,

सुनो लकड़हारे,
तुम लकड़हारा बनकर इसे कभी मत देखना,
मासूम परिंदों के साथ ही इसने पाल रखे हैं आदमखोर भी,
विमर्श करता रहता है रात भर उनसे,
खड़ा रहता है चौकन्ना चौकीदार सा!

वो जो हमारे पोखर वाले खेत के मुहाने पर,
बरगद वाला पेड़ है न...

निर्देश निधि

कैफ़ियत

ख़्वाहिशों पर थी “कैफ़ियत” तारी,
साँस लेना भी हो गया भारी।

कोई चेहरा रहा निगाहों में,
रात आँखों में कट गई सारी।

थी बहुत दूर मंज़िल-ए-मक़सूद,
हर क़दम पर थी एक दुश्वारी।

बस्तियाँ फूँकने को काफ़ी हैं,
सिर्फ़ हल्की सी एक चिंगारी।

हम ज़माने में रह गए पीछे,
क्या करें हम में थी वफ़ादारी।

लोग नादान तुमको कहने लगे,
इतनी अच्छी नहीं है होशियारी।

आप तो बदहवास हो बैठे,
मैं निभाती रही रवादारी।

इब्तिदा किसने की मोहब्बत की,
सिलसिला आज भी है ये जारी।

सिया सचदेव

ग़ज़ल

सफ़ाई पर सफ़ाई दे रहा है,
उसे भी सब दिखाई दे रहा है।

मेरी तकलीफ़ को समझे बिना ही,
वो जाने क्या दवाई दे रहा है।

जो गाली दुश्मनों ने भी नहीं दी,
वो गाली खास भाई दे रहा है।

उन्हें लगता है हम उल्लू हैं, वरना,
उन्हें सब कुछ सुनाई दे रहा है।

मेरी ग़ज़लो, मुझे भी तो बताओ,
ज़माना क्यों बधाई दे रहा है।

कि जैसे हम समझते ही नहीं कुछ,
वो कुछ ऐसे सफ़ाई दे रहा है।

मैं कैसे चैन से घर बैठ जाऊँ,
कहीं कोई दुहाई दे रहा है।

अशोक रावत

कुछ लोग कह रहे हैं...

कल तक तो दायें बायें था अब दूर हो गया।
कुछ लोग कह रहे हैं कि मशहूर हो गया...

तूने निगाह फेरी तो जलने लगे चिराग़।
सूरज तेरा ग़ुरूर तो बेनूर हो गया...

हम पर तो एक जुर्म न साबित हुआ मगर।
तोहमत लगा लगा के वो मशहूर हो गया...

सब कुछ ख़रीद लाया है ईमान बेचकर।
लेकिन ख़ुदा के नूर से माज़ूर हो गया...

रोटी चुराने वाले ने जज से कहा हुज़ूर।
बच्चों कि भूक देख के मजबूर हो गया...

अल्लाह ने ही दी थी अनलहक़ कि कैफ़ियत।
वरना तो फिर कहाँ कोई मंसूर हो गया...

रिश्तों के दरमियान खिंची ख़ून सी लकीर।
यानी अब उसकी माँग में सिंदूर हो गया...

कहता है बेमिसाल हूँ बे दाग़ बे ख़ता।
लगता है आईने से विजय दूर हो गया...

विजय तिवारी "विजय"

ख़ामोशी में गुज़र गया जनाज़ा

ख़ामोशी में गुज़र गया जनाज़ा!
यूं शायरी में बोलता बहुत था !!

ज़ार बेज़ार रोया होगा लफ़्ज़ !
युंभी भोपाल तौलता बहुत था!!

हिजरत मसर्रत नहीं थी यारां !
मेरठिया ख़ून खौलता बहुत था !!

दहकी दीवारें शोर शरारों से!
आबे बुलबुला डोलता बहुत था !!

मुस्कुराते चेहरे पे हंसते हुए हर्फ़!
परत दर परत खोलता बहुत था!!

चाहत में उसकी भूला दो जहां !
सूनी आंख टटोलता बहुत था!!

सुरज कहां कहां चराग़ मुख़्तार!
बशीर से बद्र जोड़ता बहुत था!!

" मुख़्तार अहमद"

ग़ज़ल

काम उनसे भी कुछ नहीं होता,
जो सदा विष-वचन में रहते हैं।

लोग कहते हैं साथ हैं मेरे,
पर वो अपने ही मन में रहते हैं।

रौशनी बाँटने का दावा है,
पर अँधेरे चलन में रहते हैं।

ख़ुद को सच्चा समझ के जीते हैं,
झूठ के ही चलन में रहते हैं।

दिल से निकली दुआ असर करती,
लफ़्ज़ जब भी लगन में रहते हैं।

वो ही ऊँचे मुकाम पाते हैं,
जो सदा अपनेपन में रहते हैं।

ज़ख़्म दिल के हँसी में छुपा कर,
लोग कितने सहन में रहते हैं।

विनीता सिंह विनी

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

कविता

ऐसा बिल्कुल नहीं कि हमने कुछ नहीं देखा,
हम भी राशन की कतारों में खड़े रहते थे।

कभी मिट्टी के तेल, तो कभी शक्कर के लिए,
आए दिन भीड़ की एजेंट से हाथापाई।
थोक व्यापारियों को पीछे के दरवाज़े से,
दोगुने दाम में होती अनाज सप्लाई।

उन दिनों रोज़ कहीं बंद हुआ करता था,
या कहीं धरना, या हड़ताल हुआ करती थी,
रोटी और भूख थी संसद में बहस का मुद्दा,
ये जनता दर्द से बेहाल हुआ करती थी।

बीच में ही कहीं पे पानी ठहर जाता था,
प्यास तक आते आते दरिया सूख जाते थे।
ऐसे कुछ लोग थे जो खेलते थे रोटी से,
जिनको पहचानने में हम ही चूक जाते थे।

तब यहां 'पाश' या 'दुष्यंत' या 'धूमिल' कोई,
रोज कविताओं में चिंगारी भरा करता था।
सींचकर खून से अपने कोई बंधुआ मजदूर,
खेत ठाकुर का सारी उम्र हरा करता था।

सुनते है ऐसा भी एक दौर था जब दिल्ली ने,
की थी उपवास की अपील, आंखें नम करके।
तब यहां मांओं ने बच्चों को अपने पाला था,
अपनी एक वक्त की रोटी खुशी से कम करके।

अपने बचपन से 'गरीबी हटाओ' सुन सुन कर,
हमने बेस्वाद जवानी में कदम रखा था।
वो सुबह एक दिन आखिर कभी तो आयेगी,
बस यही सोचकर इस दिल का भरम रखा था।

ये अलग बात है वो सुबह न आई अब तक,
हां, मगर पहले से बदतर अभी हालात नहीं।
जल्द ही ब्रह्म महूरत की घड़ी आयेगी,
ज़ियादा देर की मेहमान अब ये रात नहीं।

जीतते आए हैं, ढेरों लड़ाइयां अब तक,
किंतु आगे महासंग्राम अभी बाकी है।
जब भी दिखता है कोई छोटू किसी ढाबे पर,
ऐसा लगता है, अपना काम अभी बाकी है।

शेखर "अस्तित्व"

राब्ता तो है

बारिश का धूप का हवा का सिलसिला तो है
उस पर वो कह रहे हैं सफ़र ख़ुशनुमा तो है

फ़रमा रहे हैं आप ग़लत राह पर हैं हम
इस रास्ते में आप का भी नक़्श-ए-पा तो है

तुम तो लगा के चल दिये आवाज़ इक ज़रा
इतना ही देख लेते कि हम ने सुना तो है

जो कुछ ज़मीं न दे सकी देगा फ़लक वो क्या
आख़िर को कायनात का इक ही ख़ुदा तो है

होंठों पे कुछ है आप के दिल में निहाँ कुछ और
गुलशन के इस फरेब में सहरा छिपा तो है

हम ही न पड़ सके कभी बीमार ठीक से
वरना हर एक रोग की तुझ पे दवा तो है।

बस इस भरम पे हम ज़रा अच्छे बने रहे
सुनता न हो भले ही ख़ुदा देखता तो है

वैसे विनीत से है बहुत दूर आशना
दोनों के दरमियान मगर राब्ता तो है

विनीत आशना

साज़िशें अच्छी नहीं

ये अदावत, रंजिशें अच्छी नहीं,
पीठ पीछे साज़िशें अच्छी नहीं।

जो परिंदे उड़ गए हैं शाख़ से,
उन पे अब ये बंदिशें अच्छी नहीं।

मिल ही जाते मंज़िलों के भी निशाँ,
पर तुम्हारी कोशिशें अच्छी नहीं।

तुम ज़मीं के हो ज़मीं पर ही रहो,
आसमां की ख़्वाहिशें अच्छी नहीं।

तक रही हैं आँखें अब तक राह को,
दिन ढले ये गर्दिशें अच्छी नहीं।

ख़तरे में है मिट्टी के घर की असास,
आंसुओं की बारिशें अच्छी नहीं।

यूसुफ़ रईस

कुर्बान

नीर कुमार 'निर्मोही'

तुझपे दिल कुर्बान, तुझपे जान कुर्बान
हम तुझपे कर देंगे, सारा जहान कुर्बान

तू हुआ मेरा ख़ुदा, मैं हूँ तेरा फरियादी
एक तुझपे, दीन-धर्म ओ ईमान कुर्बान

तेरे सामने, मेरा अब कोई वजूद नहीं
करूँ तुझपे, ये गुरूर और मान कुर्बान

हमें तेरे बाद, और कोई चाहत ना रही
है तुझपे, अपनी आन-ओ-बान कुर्बान

मेरी मोहब्बत की इंतेहा, क्या जानोगे
'नीर' कर देगा, ज़मीं-आसमान कुर्बान।

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

सशक्तिकरण की असली पहचान

आपकी बेटी को एक शानदार नौकरी मिल गई है। महीने के अंत में छह अंकों की तनख्वाह उसके खाते में आती है। आप गर्व से कहते हैं –"मेरी बेटी तो बहुत सशक्त है!"

निस्संदेह, शिक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता और सामाजिक सम्मान किसी भी व्यक्ति के जीवन की बड़ी उपलब्धियाँ हैं। लेकिन क्या केवल यही सशक्तिकरण की अंतिम पहचान है?

कुछ वर्ष पहले एक सम्मेलन में मेरी मुलाकात अपनी एक पुरानी सहेली से हुई। वह देश के एक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय से पीएचडी कर चुकी थी और एक सम्मानित शिक्षिका थी। आर्थिक रूप से स्वतंत्र, उच्च शिक्षित और समाज में प्रतिष्ठित। देखने वालों की नजर में वह सफलता और सशक्तिकरण की मिसाल थी।

लेकिन उस दिन उसने मुस्कराते हुए मुझसे कहा, "जानती हो, मुझसे कहीं अधिक सशक्त तो वह महिला है जो रोज़ सुबह सब्जी बाजार में अपनी दुकान चलाती है। कम से कम वह अपने जीवन के फैसले स्वयं ले सकती है। मैं तो अपनी बेटी का नाम तक अपनी इच्छा से नहीं रख सकी।"

उसकी बात सुनकर मैं भीतर तक हिल गई। उस दिन पहली बार महसूस हुआ कि सशक्तिकरण का अर्थ केवल डिग्रियाँ, नौकरी और वेतन नहीं है। सशक्तिकरण का वास्तविक अर्थ है–अपने जीवन से जुड़े महत्वपूर्ण निर्णय स्वयं लेने की क्षमता और स्वतंत्रता।

वर्षों बाद उसने अपनी बेटी के साथ एक नया जीवन चुना। वह निर्णय आसान नहीं था। उसमें संघर्ष था, आँसू थे, सामाजिक दबाव थे और अनेक आरोप भी। लेकिन उसी निर्णय ने उसे अपने अस्तित्व की पहचान वापस दिलाई।

आज भी हमारे समाज में अनेक लड़कियाँ अच्छी शिक्षा प्राप्त करती हैं, सफल करियर बनाती हैं, लेकिन अपने जीवन के महत्वपूर्ण निर्णयों में उनकी आवाज़ सबसे अंत में सुनी जाती है। कहीं आगे की पढ़ाई का निर्णय उनका नहीं होता, कहीं विवाह का, तो कहीं अपने सपनों का।

यही कारण है कि कई बार पढ़ी-लिखी और आर्थिक रूप से सक्षम बेटियाँ भी अन्याय, दहेज उत्पीड़न, मानसिक प्रताड़ना या अपमानजनक परिस्थितियों में वर्षों तक चुप रहती हैं। समस्या केवल आर्थिक निर्भरता की नहीं होती; समस्या यह भी होती है कि बचपन से उन्हें अपने लिए निर्णय लेने का अभ्यास ही नहीं मिला होता। परिणामस्वरूप वे अपनी ही सोच और निर्णयों पर भरोसा करना भूल जाती हैं।

इसलिए बेटियों को केवल पढ़ाइए मत, उन्हें निर्णय लेना भी सिखाइए।

उन्हें छोटी-छोटी बातों में अपनी पसंद चुनने दीजिए। गलतियाँ करने दीजिए। हर बार उनकी जगह निर्णय मत लीजिए। जब वे चूकें, तो उन्हें डाँटने के बजाय समझाइए और उनका साथ दीजिए। क्योंकि जीवन में सही निर्णय लेने की क्षमता अक्सर कुछ गलत निर्णयों के अनुभवों से ही विकसित होती है।

सच तो यह है कि जीवन में कुछ भी स्थायी नहीं है। माता-पिता का साया भी हमेशा साथ नहीं रह सकता। इसलिए बच्चों को सबसे बड़ा उपहार यह नहीं कि हम उनके लिए हर निर्णय लें, बल्कि यह है कि हम उन्हें अपने निर्णय स्वयं लेने योग्य बना दें। क्योंकि आत्मनिर्भरता केवल आर्थिक नहीं होती, मानसिक और निर्णयात्मक आत्मनिर्भरता उससे भी अधिक महत्वपूर्ण होती है।

लड़कियाँ केवल घर की जिम्मेदारी नहीं, उजाले का स्रोत भी हैं। उन्हें अपने तरीके से चमकने दीजिए।

यकीन मानिए, उनका आत्मविश्वास केवल उनका जीवन ही नहीं बदलेगा, बल्कि पूरे समाज को भी रोशन करेगा।

सुजाता चक्रवर्ती

ताकि जंगलों को बचाए रख सकूं

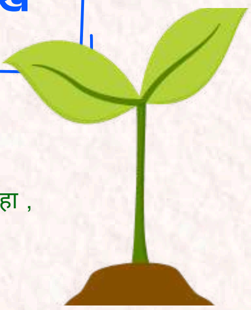

मैंने
एक पेड़ को
हमेशा ही
स्वयं में ज़िंदा रखना चाहा ,
जब कभी
समय की धूप
कुछ ज़्यादा तीखी लगी,
उसकी छांव को सोखकर
मैं शीतल हुई ,
जब कभी
दरक कर बिखरने लगी
रिश्तों की उपजाऊ मिट्टी ,
मैंने
उसकी जड़ों से सीखी
समंजस्यता की भाषा,
जब कभी
मौसमों के विरुद्ध
मैं कई-कई बार
पत्तों की तरह झरकर गिरी ,
वह
भीतर ही भीतर
चुपचाप बदलता रहा मुझे
किसी पीले बसंत की तरह ,
और,,,
विश्वास की नई कोंपलें फिर से फूटने लगीं,
मैंने देखा है
पेड़ कभी शोर नहीं करते
बस, चुपचाप जंगलों को बचाए रखते हैं
ताकि सभ्यताएं जीवित रह सकें !!
हे ईश्वर
मृत्युपरांत नहीं चाहिए मोक्ष ,
मुझे
बना देना एक बीज
ताकि पेड़ों को बचाए रख सकूं,,
जंगलों को बचाए रख सकूं,,
ईश्वर की जगहों को बचाए रख सकूं,,, !!

नमिता गुप्ता "मनसी", मेरठ

हौसले से पूरे होते हैं

सपने देखने से नहीं,
हौसले से पूरे होते हैं।
आँखें मूंदकर जो देखा,
वो पलकों पर ही खोते हैं।

सिर्फ चाहत काफी नहीं,
राहों में काँटे बोते हैं।
जो गिरकर फिर उठ जाए,
मंज़िल को बस वो छूते हैं।

रातों को जागना पड़ता है,
ख़्वाबों को खून से सींचना पड़ता है।
तकदीर भी झुकती है तब,
जब इरादा पर्वत सा होता है।

सोने से पहले सोचना छोड़ो,
उठकर कुछ करना सीखो।
सपने सब देखते हैं दुनिया में,
पर पूरा हौसला रखकर करते हैं वो।

इसलिए कहता हूँ बार बार,
नींद में देखे ख्वाब अधूरे होते हैं।
जागी आँखो के सपने देखने ही
बुंलद हौसले से पूरे होते हैं।

जागकर देखा सपना ,अपना होता है,,,
विश्वास और मेहनत से सपना सच्चा होता है।
सपने हर इंसान को जीभर कर देखने दो,,,
सपने पूरे करने के लिए जमीर को पनपने दो।

मंजू सरावगी 'मंजरी'
रायपुर

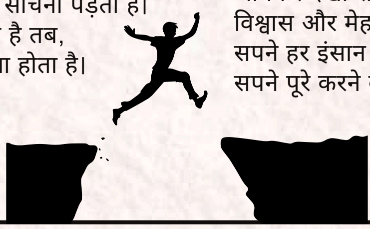

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

सपने देखने से नहीं हौसलों से पूरे होते हैं

टूट कर बिखरे तो हम किरचें-किरचें रह जाते हैं,
लगती है ठोकर और हम लड़खड़ा के ढह जाते हैं।

मूँद कर अँखियाँ ख्वाब हम कई सजाते हैं मगर,
सपने देखने से नहीं, हौसलों से पूरे होते हैं।

गुजरना पड़ता है कितने ही इम्तिहानों से,
लड़ना पड़ता है कभी अपनों से, कभी बेगानों से।

जाग कर बीतती हैं कितनी रातें बैचैनी में,
मुस्कुराहटे ढूँढनी पड़ती है, आँखो की नमी में।

गिरते, सम्हलते, थकते, टूटते, मगर थोड़ा ठहरकर, फिर चलते हैं जो,
हौसलों के पंख लगा आसमान तक उड़ते हैं वो।

इसलिए कहते हैं कि,
सपने देखने से नहीं, हौसलों से पूरे होते हैं,
पहुँचते हैं मंजिल तक वही जो अंधेरो में भटकते हैं पर खोते नहीं हैं।

स्मृति गुप्ता,
जबलपुर

"खेल है कर्मों का.."

मैं क्यों करूं एतबार फ़रेबी बसंती बसंत का
मुझे जब देगा ये सौगात पीत पतझड़ का..

थमता नहीं सिलसिला दर्द का
नहीं रहा चारागाह मेरे मर्ज का..

ऋत बदले ना बदले नसीबा
कहां ले जाऊं बोझ फकीरी का..

जी करता है नोच लूं हाथों की लकीरें
सब खेल है जब अपने कर्मों का..

क्यों भटके "नीलांग" अर्थहीन जीवन में
जब गुम है पता मंजिल का..।

गिरीश
"नीलांग"

खुद को निभा पाए

बिखरे कई हिस्सों में
तब अपने हिस्से में आये है
समय का पहिया घुमा
तब खुद को पाये है,...

जीवन के कालचक्र में
डटकर कदम बढ़ाये है,...
लाग-लपाट किये बिना
अपनी दुनिया बनाये है,....

हर सोच में दिखे ही अच्छा
ये ख्याल न ज़हन में लाये है
गिरकर सम्भले है मुस्कुराये
ज़मी से जुड़ मन को लुभाये है,...

मन की मन में रख कर
मन से न छल कर पाए है
दुनिया की भीड़ से निकल
खुद की ये जगह बनाये है,....

पाने -खोने से कोई बैर नहीं
साथ अपनों का प्यार पाए है
एहसासो से मन को जोड़े हुए
जीवन से तब मिल पाये है,....

कि तप है, जप है ईश्वर का संग है
मन के साथ खुद को निभा पाये है..!!

नंदिता तनुजा

कभी हम रेल की खिड़की से,,,

अगर हो भीगने का दिल कहीं बादल नहीं मिलते।
तुम्हारे साथ वो गुज़रे सुहाने पल नहीं मिलते।।

कभी हम रेल की खिड़की से झाँका खूब करते थे।
सफ़र में अब कहीं भी दूर तक जंगल नहीं मिलते।।

वो पहले जैसी उल्फ़त अब कहीं भी तो नहीं दिखती
कि नन्ही जानों को भी ताऊ या अंकल नहीं मिलते।।

उसे आदत है वो वादा कभी पूरा नहीं करता।
मिलन का वादा कर के भी कहा है कल नहीं मिलते।।

वो अपने प्यार का इक़रार ख़्वाबों में ही कर देती।
वो फिर नाराज़ होकर कह गई है 'चल नहीं मिलते।।'

सयाने लोग जब से, हो गए बहरुपिए "तन्हा"।
सड़क पर घूमने वाले वो अब पागल नहीं मिलते।।

सलीम तन्हा

रंगोली

प्रीति की रीति संग भाव गंगा बहे,
नाव जीवन की फूलों से भर जाएगी,
मन जलाशय में चिन्तन के मोती रहे,
भाव कलियां कर्म की महक जाएगी।
भाव माटी के संग प्रेम माटी वतन,
मन धरा पर रहे खिलता तेरा चमन,
फूल चंदन बनो नेकी के संग चलो,
प्रेम कहानी दिलों में उतर जाएगी।।

मन कुचाले भरे उसे रोको सदा,
हर रूकावट जीवन से हट जाएगी,
नूर कर्मों का जगत में चमकता रहे,
धर्म के संग चलो राह मिल जाएगी।
प्रेम करूणा की धारा बहती रहे।
नाव सच की हमेशा चलती रहे।
उम्र भर नेक राह पर चलते चलो,
जीवन की रंगोली चमक जाएगी।

नूतन
"प्रयाग रजनी"
"प्रयागराज"
उत्तर प्रदेश

उपवन

सन्जू श्रृंगी
कोटा, राजस्थान

अभावों में जो पले बढ़े,
हर दु:ख में ढ़ल कर आए हैं

खुद अपने बाहुबल से जो
बाधा को छल कर आए हैं

चुनते है पलकों से काँटे
जो इस फूलों के उपवन से

छाँव उन्हें ही सुखद लगे,
जो धूप में चल कर आए हैं

प्यार

रात सजने लगी चांद खिलने लगा/
हिज़्र की आग में प्यार जलने लगा//

छोड़ के वो गए ये शिकायत रही /
वक्त के साथ दिल ये सँभलने लगा//

गीत सुर साज़ नगमे ग़ज़ल जब सुनीं/
ग़मज़दा दिल हमारा बहलने लगा//

तल्खियां ही सही पर यही सच रहा/
इश्क़ तन्हाइयों संग पलने लगा//

बूंद इक अश्क़ की आंख से जो गिरी/
दर्द बन मोम फिर कुछ पिघलने लगा//

नेहा शिवम्स
क्सेना

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

शुक्र है पांव में बेड़िया आ गई

चल रहे थे सफ़र आंधियां आ गई,
शुक्र है पांव में बेड़िया आ गई।

याद करते रहे रात दिन आज हम,
नाम लेते हमें हिचकियां आ गई।

आज मेरा बिखरता रहा आशियाँ,
याद को बांधने रस्सियाँ आ गई,

डूबता ही रहा उसके अरमान में,
पार कर ने मुझे कश्तियां आ गई।

लोग सम्मान देने को राजी हुए,
क्या करूं बीच में खामियां आ गई।

प्रेम की बात सब जो समझते रहे,
जंग में दोस्ती दरमियां आ गई।

कोई करता सियासत कहां दोस्तों,
मिलती ताकत बहुत कुर्सियां आ गई।

अली अंसारी "अलि "

इनर चाइल्ड

मैं मिलती हूँ जब भी
अपने इनर चाइल्ड से
देखती हूँ,
बेचारा कितना अकेला है
कितना उदास है
कोई भी नही आस पास
जो उसे गले लगा ले
उसके आँसू पोंछ दे
उससे पुचकार ले
उसे गोद में उठा ले
और बोले
बच्चा क्या हुआ
क्यों उदास है
मैं हूँ ना तेरे पास
लेकिन जब कोई नहीं दिखता
आस पास ऐसा
तो मैं खुद ही
लेकर गोद में उसे
पुचकार लेती हूँ
और कहती हूँ उससे
मत उदास हो मेरा बच्चा
कोई हो ना हो
मैं हूँ ना तेरे पास
हमेशा हमेशा के लिए।

अर्चना जैन

तुम स्वयं में एक सवेरा हो!

जब समय का चक्र विपरीत चले,
और भाग्य तुम्हारी परीक्षा ले,
तब खुद को हारा हुआ, पतंग न समझना,
तुम खुद को वो उड़ता बाज़ समझ लेना,
जो तूफानों के थपेड़ों से भी ऊँची उड़ान भरता है।

जब उम्मीदों के सब दीये बुझने लगें,
और साए भी साथ छोड़ने लगें,
तब खुद को अंधकार का कैदी न समझना,
तुम खुद को वो छोटा सा जुगनू समझ लेना,
जो अपनी ही धुन में घोर तमस को चीर देता है।

जब लोग तुम्हारी काबिलियत पर सवाल उठाएँ,
और ताने देकर तुम्हें डराना चाहें,
तब खुद को कमजोर और बेबस न समझना,
तुम खुद को वो गहरा समंदर समझ लेना,
जिसमें नदियाँ आकर खुद अपना अस्तित्व खो देती हैं।

जब संघर्ष की धूप बहुत तेज सताए,
और मन थककर बैठ जाना चाहे,
तब खुद को टूटा हुआ मुसाफिर न समझना,
तुम खुद को वो अंकुरित बीज समझ लेना,
जो चट्टान का सीना फाड़कर भी मुस्कुराना जानता है!

मंजुल त्रिवेदी

खामोशी

**दुश्मनों की चालाकियाँ
दिखती रही हैं।**

**बेवजह की नादानियाँ
दिखती रहीं हैं।**

**वक्त आने पर,
टूट जाते लोग ऐसे।**

**सज्जनों की जब खामोशियाँ
दिखती रहीं हैं।।**

**अजय पाण्डेय
बेबस**

नई परम्पराएं

कहते हैं परंपरा की जड़ें
इतनी, इतनी, इतनी गहरी होती हैं कि
तल, अतल, रसातल को वेधती हुई
पाताल पहुंच जाती हैं

उन्हें उखाड़ना
लगभग नामुमकिन है
भट, सुभट, महाभट,
रथी, महारथी,
छली, बली, खली
सब के सब इस कोशिश में
मुंह की खा चुके हैं

इसलिए नई सोच के
नए रहनुमाओं ने
नया रास्ता निकाला
पुरानी परंपराओं को
उखाड़ फेंकने का इरादा छोड़
उनके बरक्श नई परंपरायें डाला

नई परम्पराओं की जड़ें
बड़ी चतुराई से आकाश में फैलाया
पूंजी, कम्पनी, बाजार और प्रचार के जरिये
उन्हें सर्वव्यापक,
सर्वग्राह्य बनाया

अतीत की छाया से मुक्त
नई परम्पराएं बिल्कुल नई हैं
उनमें नएपन का नशा है
आधुनिकता की आत्ममुग्धता है
फैशन का तड़का है
उपभोग की बलवती लालसा है
लोच है, लचक है
गति है, नवीनता है
चकाचौंध है
खास बात यह कि वे
हर तरह की चिंता से बेखबर
अपराधबोध और प्रायश्चित से परे
निजता और आत्मगौरव की भावना से रिक्त हैं

पुरानी परंपराएं मरी नहीं
नई परम्पराओं के
घर, देश और समाज पर
प्रकृति और पर्यावरण पर
पड़ रहे प्रतिकूल प्रभावों से क्षुब्ध
पुराने अनुपयोगी समान की तरह
घर के किसी कोने में पड़ी हैं
या तो किसी बुजुर्ग की तरह
घर के बाहर खटिया पर डली हैं

उन्हें इंतजार है
झांपी में छुपा कर बारात लाये गए
सयान की भूमिका का।

**संतोष कुमार द्विवेदी
उमरिया**

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

एकांत

एकांत मुझे दंड नहीं,
एक गहरा खुला आकाश लगता है
जहां भीड़ की आवाज़ें नहीं,
अपने भीतर की पदचाप सुनाई देती है।

वहीं
हम कविता रचते हैं,
कहानियों के अनदेखे पात्रों से बातें करते हैं,
गीतों में अपने टूटे हिस्सों को सिलते हैं,
संगीत में समय की धूल झाड़ते हैं,
सिनेमा और थियेटर में
मनुष्य होने की अधूरी पटकथाएँ पढ़ते हैं।

एकांत में
कोई विश्वविद्यालय नहीं होता,
फिर भी हवा शिक्षक बन जाती है,
पेड़ पुरखे लगते हैं,
बयार किसी भूली हुई भाषा की व्याख्या करती है,
पक्षियों की उड़ान
स्वतंत्रता का व्याकरण समझाती है,
नदियां बहना सिखाती हैं,
और समंदर
सीमाओं के भीतर असीम होना।

वहीं
हम अपनी धड़कनों को सुनते हैं
जैसे कोई पुराना रेडियो
धीरे-धीरे सही तरंग पकड़ रहा हो।
ऑब्जर्वेशन की महीन सुइयों से
दिनों को बुनते हैं,
ज़रूरी और गैरज़रूरी के बीच
एक अदृश्य रेखा खींचते हैं,
सही और ग़लत को
भीड़ की तालियों से नहीं,
अपने मौन की अदालत से तौलते हैं।

एकांत में
हम केवल दूसरों को नहीं पढ़ते,
ख़ुद को भी पढ़ते हैं।
अपने भीतर छिपे डर,
ईर्ष्या, प्रेम, असफलताएं,
छोटेपन और विशालता
सबकी नाप लेते हैं।

भीड़ अक्सर हमें
दूसरों का चेहरा बना देती है,
पर अकेलापन
धीरे-धीरे हमारी असली आकृति लौटाता है।

इसलिए ऐ ज़िंदगी,
मुझे थोड़ा अकेलापन बख़्श दो।
इतना कि मैं
दुनिया से भागू नहीं,
बल्कि उसे और गहराई से समझ सकूं

इतना कि
मैं शोर में खो न जाऊं,
और जब बोलूँ
तो शब्दों में
हवा, नदी, पेड़, पक्षी, समुद्र
और अपनी धड़कनों की सच्चाई साथ ला सकूं।

उपेंद्र रघुभामा

बचे रहेंगे

भाऊराव महंत

पत्थर पर लिखी कविता
कभी पत्थर नहीं हो सकती

और न ही
पत्थर कविता बन सकता

बची रहेगी हमेशा
कविता पत्थर बनने से।
बचा रहेगा हमेशा
पत्थर कविता बनने से।।

फासला

गुलशन मेहरा

हमारे बीच जितना फ़ासला है
नहीं लगता कोई भी रास्ता है

जिसे भी चाहिए बा-शौक़ रख ले
ये इक पत्थर जो मुझमें दिल-नुमा है

उसे हर हाल में यकजा करूँगा
वो टूटा शख़्स मेरा आईना है

तेरे अश'आर हैं इल्म-ए-तसव्वुफ़
तू शाइर है या कोई औलिया है

ग़ज़ल

दुखों के दिन गुज़र जायेंगे क्यों मायूस होते हैं
सभी की ज़ीस्त में दो चार दिन मनहूस होते हैं

अंधेरों में खुली आँखों से अक्सर कुछ नहीं दिखता
उजाले बंद आंखों से हमें महसूस होते हैं

मिलें उससे तो ख़ुश होकर बताते हैं ज़माने को
हमारी जिंदगानी में हमीं जासूस होते हैं

ज़रूरी तो यही है वो रहें घर में अभी लेकिन
कभी अमरीका होते हैं कभी वो रूस होते हैं

हर इक दिल में मुहब्बत गीत बनकर गुनगुनाती है
न कहिए इश्क़ को कुछ ख़ास दिल मख़्सूस होते हैं

'ज़िया' तारीफ़ तो छोड़ो बुराई भी नहीं करते
ये अब के लोग भी कैसे अजब कंजूस होते हैं

सुभाष पाठक
'ज़िया'

आख़री सफर

आख़री सफर तय करने से पहले,
क्यूँ? लड़खड़ाते हैं कदम.......
जैसे कह रहे हो, अंतिम पायदान
नहीं है यह.... सफर है यह तो
सफलता से पहले संघर्ष की
कुछ कदमों के फासले....
अक्सर हमें यही फासले
एक नया सबक सीखा भी जाते।

अनकहे से शब्द मेरे, जाने क्या कह जाते!

मौजूदगी जब महसूस होने लगती है,
एक अहसास, जो हर कभी.......
हृदय की हर पोर तक होकर आता,
कभी-कभी रुक कर...........
हाँ.... मैं भी तो ठहर सी जाती हूँ,
हौसले का पाठ जब कोई अंजाना-सा
हौले से पढ़ा कर... चला जाता...
हिम्मत की थाम के डोर...
फिर से खड़ी हो जाती नई भोर के संग।
अक्सर अंजाने रिश्ते ही
एक नया सबक सीखा भी जाते।

अनकहे से शब्द मेरे, जाने क्या कह जाते!

थाम के हथियार कागज़ और कलम की,
लिखते हैं अचानक............
मन के कोर से उपजे ये भाव-रूपी शब्द,
आख़र-आख़र जुड़ कर के......
एक नयी सी परिभाषा लिख जाते।
सहसा कलम मेरी अपरिभाषित-सी,
अक्सर ख्वाब कोई बुन जाते,
एक नया सबक सीखा भी जाते।

अनकहे से शब्द मेरे, जाने क्या कह जाते!

जहाँ आख़िरी में रह जाते हैं कुछ किस्से,
ना! को हाँ! में बदलना........
कभी आसान हुआ है भला? नहीं ना।
एक शख्स मानो आतुर है.....
अपनी जीत का परचम लहराने को।
अक्सर नयी जीत भी
एक नया सबक सीखा भी जाता।

अनकहे से शब्द, जाने क्या कह जाते!

अपेक्षापवन व्यास

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

एकांत

नहीं हो सकता व्यक्ति कोई एक समूह।
व्यक्ति तो होता है हमेशा अकेला।
वो नहीं हो सकता एक से दो
और दो से चार।

फिर भी जुटाता है सारी उम्र
रिश्तों की भीड़,
और सोचता है कि
वो अकेला नहीं।

सोचता है,
ये रिश्ते हर लेंगे सारे गम,
किन्तु नहीं जानता—
कोई नहीं हरता किसी के गम।

होती है जब भी ग़मों की भीड़,
रिश्तों की भीड़ हो जाती है
एकदम गुम।

हो जाता है व्यक्ति
तन्हा ग़मों की भीड़ में,
फिर भी दौड़ता है हर कोई
रिश्तों की भीड़ जुटाने को,
इस उम्मीद में
कि शायद कोई तो होगा इनमें,
जो बाटेंगा उसके साथ
उसके गम।

और इसी आस में
दौड़ता रहता है तमाम उम्र,
और हो जाता है एक दिन गुम
रिश्तों की मरीचिका में।

छोड़ जाता है कुछ गम
उनके लिए,
जिनसे उसने
कुछ रिश्ता जोड़ा था।

और चलता रहता है
निरंतर यह क्रम—
रिश्तों की भीड़ जुटाने का,
और अपने पीछे
कुछ गम छोड़ जाने का।

कभी ना रुकने वाला
जोड़ने और छोड़ने का क्रम!!

सुधीर "धीर"

पत्रकारिता

सत्य मिलाओ झूठ में
और झूठ में साँच
पत्रकारिता हो गयी
नग्न-नरों का नाच ॥१॥

मालिक मोटे हो रहे
सम्पादक लाचार
कचरा-पेटी हो गये
हिन्दी के अख़बार ॥२॥

पूँजीपतियों के भरे
कुआँ-बावड़ी-ताल
ऐसी बरखा भूतनी
इससे भला अकाल ॥३॥

कहलाते हैं पुण्य पर
सभी पाप के फूल
हिन्दी-चैनल में भरे
अंगरेज़ी के फूल ॥४॥

लाइट एक्शन कैमरा
बातों का बाज़ार
झूठ बरसता रात-दिन
भीजे सब संसार ॥५॥

कृष्ण कल्पित

श्री सीताराम भजन

कब आओगे प्रभु सुध लेने मोरी
अंखियाँ तरस गईं यादों में तोरी

रामा कीरत गाऊँ आरती घुमाऊँ
मानस पढ़ पढ़ सबको सुनाऊँ
दोहे छंद और चौपाई बुलाते
दीपक जलते प्रभु रोशनी तोरी।

तुलसी ने गाया उमापति सुनाते
काग भूसुंडी गरुड़ को सुनाते
गणपति वंदन केसर का चंदन
रामचरित कथा सीताराम तोरी।

रोम रोम राम का नयनों में पानी
सत्य सनातन है राम की कहानी
भरोसा भरत का आए शत्रुघन हैं
प्रेम शबरी सा उम्मीदें हैं तोरी।

लक्ष्मण बुलाऊँ हनुमान रिझाऊँ
सीता माता की भक्ति मैं गाऊँ
आह्वान न आए विसर्जन न जानूँ
कैसे करूँ मैं प्रभु पूजा तोरी।

कब आओगे प्रभु सुध लेने मोरी
अंखियाँ तरस गईं यादों में तोरी ।

संदीप नेमा दीप भोपाल

गिर्मिट की ज़ंजीरें

गिरमिट की जंजीरें
समुद्र ने निगल ली
गाँव की वह पगडंडी,
जहाँ माँ की हँसी
और मिट्टी की महक बसी थी।
पीछे छूट गया आँगन,
पीपल की छाया,
और पिता का काँपता हुआ हाथ—
जिसने जाते वक़्त
माथे को छुआ था।

एक काग़ज़ के टुकड़े पर
लिख दी गई किस्मत,
नाम नहीं—
एक नंबर बन गया जीवन!
गिरमिट की मोहर लगी,
और आत्मा को
जंजीरों में बाँध
समंदर पार भेज दिया गया।

सूरीनाम की धरती पर
सूरज की किरणें बदन को भेदतीं ,
गन्ने के खेतों में
पसीने की नदियाँ बहती थीं
न दिन का हिसाब,
न रात का आराम—
सिर्फ़ कोड़ों की आवाज़,
और नसों में जलता हुआ
एक अनकहा विद्रोह।

माँ की यादें
हथेलियों की रेखाओं में
सूखती रहीं,
और लोकगीत
होंठों पर काँपते रहे—
"बाबुल मोरा..."
पर आवाज़ को
भी डर लगता था
खुलकर रोने से।

फिर भी—
उन्होंने हार नहीं मानी।
मिट्टी पर गिरते आँसू
बीज बन गए,
खामोशी में
संघर्ष उग आया।
टूटे शब्दों से
एक नई भाषा बनी—
सरनामी हिन्दुस्तानी।

उनकी थकी हुई उंगलियों ने
इमारतें नहीं,
पहचान गढ़ी,
उनके झुके कंधों ने
इतिहास को
सीधा चलना सिखाया।

आज जब हवा
सूरीनाम से बहकर आती है,
तो उसमें गन्ने की मिठास नहीं,
उन पूर्वजों की साँसें हैं
जो बिना शिकायत
ज़ंजीरों में भी आशाओं
के स्वप्न गढते रहे।

वे चले गए...
पर उनके कदमों की आहट
आज भी
हमारी नसों में गूंज रही है।

डॉ ऋतु शर्मा ननंन पाँडे

कुण्डलिया।

जून महीना तप रहा, जलती धरती धूप।
पथिक प्यास से ढूँढता, मिले कहीं पर कूप।।
मिले कहीं पर कूप, जहाँ हो जल मृदु शीतल।
वृक्षों की घन छाँव, बैठकी हो तरु के तल।।
सह अलका कवि रूप, थपेड़े लू व पसीना।
घर आँगन न सुहाय, तपे है जून महीना।।

डॉ अलका गुप्ता
'प्रियदर्शिनी'
लखनऊ

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

बाल मजदूर मत बनाओ

बचपन है हमारा, बचपना रहने दो, बाल मजदूर मत बनाओ,
हमारे सीने में भी दिल धड़कता है, हमें सीने से लगाओ।
हमारी मजदूर मां ने, कपड़े के झूले में झुलाकर पाला है,
मां ही हमारी गुरु है, मां ही हमारी शाला है।
संघर्षों में जन्मे हैं हम, संघर्षों को झेला है,
संघर्षों ने घिस-घिस कर हमको, बना दिया सुदृढ़ ढेला है।
एक टुकड़े रोटी के लिए, बाल मजदूर-भिखारी बनाते हो,
हमदर्दी नहीं, सहारा चाहिए, हमें अपना क्यों नहीं बनाते हो?
इक बालक की धन-शिक्षा की, जिम्मेदारी अगर तुम ले लोगे,
अच्छा-शिक्षित इंसान बना, अनगिनत दुआएं भी लोगे।
फिर देश तरक्की पर होगा, हम भी तो खुशरंग होंगे,
अंजुरी भर मदद करोगे तो, प्रभु भी सबके अंग-संग होंगे।
बाल श्रम करवाकर बचपन मत छीनो, हमें भी बचाओ,
सिर्फ लिखो मत, बातें मत करो, कानून को अमल में भी लाओ।

लीला तिवानी
ऑस्ट्रेलिया

घास

घास बड़े जल्दी इठलाने लगती है
जिस धरती पर ऊगती है
उसी को ढांकने लगती है

पर घास की एक निश्चित उम्र होती है
या तो वह काट ली जाती है
जानवर चर ले जाते हैं
या स्वत: समाप्त हो जाती है

और धरती
पुन: अपने स्वरूप को प्राप्त करती है

भलाई इसी में है कि
घास को अपना भ्रम तोड़ देना चाहिए
कि वह धरती से बड़ी है

घास कल जिस धरती पर खड़ी थी
आज उसी पर पड़ी है
और धरती, और धरती कल जिस जगह खड़ी थी
आज भी उसी जगह अटल और अडिग खड़ी है

बड़े, बड़े होते हैं
बड़प्पन बताते नहीं फिरते
धरती, धरती होती है सबका वजन ढोती है
घास, घास होती है हवा के थपेड़ों में बिखर जाती है...!

आशीष मोहन

शायर

कहीं शादी कहीं फंक्सन कहीं त्यौहार में शायर
लगे हैं हर तरफ़ देखो सभी व्यापार में शायर

दुकानें खुल गईं हैं हर तरफ कविता कहानी की
लिए तुकबंदियां बैठे हैं अब बाज़ार में शायर

न बहरों का पता जिनको न छंदों का है अंदाज़ा
मगर छपते फिरे हैं रोज़ ही अख़बार में शायर

वही ग़ज़लें वही नज़्में वही नग़्मे वही मुक्तक
वही चेहरा उठाये फिर रहे दरबार में शायर

लिए फिरते थे जो कल तक यहां परचम बग़ावत का
वहीं दिखने लगे हैं आज कल सरकार में शायर

निशस्तें चल रही हैं आज कल खस्तों समोसों पर
बिछाए बैठे दस्तर-ख़्वान हैं दरबार में शायर

लिए चेलों को फिरते हैं करें घर घर ये जजमानी
मचाने लग गए हैं गंध कारोबार में शायर

कहां जाए कहो मदहोश ले कर शायरी अपनी
नहीं दिखती कोई भी राह अब संसार में शायर

अजय श्रीवास्तव
मदहोश

!! वो कौन है !!

कुछ बात है उसकी आँखों में,
मधु प्याला है छलकाती।
सजल स्नेह की चंचल मूरत,
जीना हमें सिखलाती।।

वो कौन है? जो तन्हाई में,
आकर चुपके से सहलाती।
वो कौन है? जो सोई रातों में,
जुन्हाई बन हमें जगाती।।

जानबूझ कर सपनों में वो,
आकर करती है जादू।
अब न पूछो हाल हमारा,
मन मेरा हुआ बेक़ाबू।।

मधुर गीत अब हमें सुनाती,
उसके पाँव की पायल।
छम-छम की पग ध्वनि हमको,
करती प्रतिपल घायल।।

आंचल अपना जो रखा उसने,
मेरे कंधों के ऊपर।
कौंध उठीं मन की उमंगें,
उसके अधरों को छूकर।।

मादक नयन सुरा के प्याले,
पीकर हुआ मैं मतवाला।
धवल शुभ्र उस गोरी पर,
दिल अपना मैं हारा।।

लहराया मैं ऐसे जैसे,
नाव संग डोले पतवार।
थाम लिया बाहों में उसने,
भ्रमित हुआ जब बीच मँझधार।।

जुल्फ़ें उसकी सावन जैसी,
कर गईं मादक सी बौछार।
बेसुध होकर मन लहराया,
पाकर उसका प्रेम अपार।

याद सदैव वो मुझको आती,
जब-जब बहे पवन पुरवाई।
काश! अगर वो पास जो होती,
हर लेती मेरी तन्हाई।।

प्रार्थना राय

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

कविता

दुनिया ये पागल सारी है
अपनों से हरदम हारी है

छूटा शहर, गली, हर गाँव
सफ़र अभी तक जारी है

जो आये, आकर लौट गए
दिल उनका आभारी है

सुख के बस ढलते किस्से हैं
दु:ख का हर पाँव भारी है

पेड़, छाँव, छत खो बैठे
जीवन की धूप क़रारी है

इश्क़, मुहब्बत, आशिक़, दिल
सब मरने की तैयारी है।

प्रीति अज्ञात

कुछ बात बने।

मैं गीत गाऊँ, तुम गुनगुनाओ तो कुछ बात बने,
साथ राहों पर तुम भी आओ तो कुछ बात बने।

सफ़र ज़िंदगी का बहुत दूर है हमसे अभी,
तुम अपना हाथ बढ़ाओ, तो कुछ बात बने।

हल्की सी मुस्कुराहट, शिकन चेहरे की मिटा देगी,
तुम बस थोड़ा मुस्कुरादो, तो कुछ बात बने।

किसी के दर्द को हमदर्द बना ले कोई अगर,
उस दर्द की दवा भी तुम बनो, तो कुछ बात बने।

जिसे न आये कभी जीने का सलीका अगर,
उसे सादगी से सिखाओ, तो कुछ बात बने।

ख़ुदा मानकर हर शह को जो सजदा करे,
तुम उस पर जाँ निसार करो, तो कुछ बात बने।

सपना परिहार

ग़ज़ल

जिन्हें मंज़िल की हसरत है, थका तो वो नहीं करते,
इरादे हों बुलंद जिनके,रुका तो वो नहीं करते।

हमें बहला नहीं सकते,हो तुम इन झूठे बयानों से,
जिन्हें है प्यार दुनिया से,दग़ा तो वो नहीं करते।

जो अपना हमको कहते हैं वो ही अपने नहीं होते,
हमारे दिल की आवाज़ें सुना तो वो नहीं करते।

जिन्हें हम से नहीं निस्बत ,जिन्हें न वास्ता कोई,
कहां हैं कैसे हैं हम तुम पता तो वो नहीं करते।

जो बातें करते रहते ज़माने से मुहब्बत की,
कि हमने खूब देखा है,भला तो वो नहीं करते।

नमित कैसा ज़माना है बगावत की है अपनों ने,
कभी भी अपने दिल से यूं जुदा तो वो नहीं करते।

राकेश नमित

कारगिल विजय दिवस

यह दिन है उन शहीदों को
श्रद्धासुमन चढ़ाने का।
जिन्होंने संकल्प लिया था,
मातृभूमि को बचाने का।

घात लगाकर बैठे दुश्मन
अपनी चाल चल रहे थे,
सैनिको के बुलंद हौसले,
उनकी ढाल बन रहे थे।

उस ताकत के आगे,
कम उम्र नहीं कुछ माने का।
जिन्होंने संकल्प लिया था
मातृभूमि को बचाने का।

बर्फीली ज़मीन और हवाएं
उनके पैर धंसा देती थीं,
फिर भी बंदूकों की गोलियां
जोश से दागी जाती थीं।

दुर्गम पथ था देर से पता लगा
शत्रु के घुस जाने का।
जिन्होंने संकल्प लिया था
मातृभूमि को बचाने को।

डॉ अमृता शुक्ला

प्रेम शायद ऐसा ही होता है

प्रेम शायद ऐसा ही होता है
किसी के जीवन में
शोर की तरह नहीं,
धीरे-धीरे उतरती हुई शाम की तरह आना।

बिना कहे समझ लेना
कि सामने वाला थका हुआ है,
और उसके पास बैठ जाना
बिना किसी सलाह, बिना किसी प्रश्न के।

प्रेम बड़े वादों में नहीं रहता,
वह छिपा होता है
चाय के उस आख़िरी घूँट में
जो कोई आपके लिए बचाकर रख देता है,
या भीड़ भरी सड़क पर
आपकी चाल के अनुसार
अपने क़दम धीमे कर लेने में।

प्रेम वह नहीं
जो हर समय शब्दों में दिखाई दे,
कई बार वह
रसोई से आती हुई पुकार में होता है,
देर रात भेजे गए एक छोटे-से संदेश में,
या उस चिंता में
जो पूछती है
"घर पहुँच गए?"
कभी-कभी प्रेम
पतझड़ की सूनी डाल पर रखे
फूलों से भरे एक लिफ़ाफ़े जैसा होता है,
जो यह विश्वास दिलाता है
कि दुनिया चाहे जितनी कठोर हो जाए,
कोमलता अब भी बची हुई है।

प्रेम किसी को बदल देना नहीं,
बल्कि उसके सारे अधूरेपन के साथ
उसे स्वीकार कर लेना है।
उसकी कमियों के बीच
उसके अच्छे हिस्सों को बचाए रखना है।

और शायद प्रेम का सबसे सुंदर रूप
यही है कि
कोई आपके जीवन में हो
जिसके सामने
आपको मज़बूत होने का अभिनय न
करना पड़े।

प्रेम का अर्थ
हमेशा साथ रह जाना भी नहीं होता,
कभी-कभी यह किसी की स्मृतियों में
सम्मानपूर्वक बने रहना भी होता है।

फिर भी,
यदि जीवन की लंबी यात्रा में
कोई ऐसा मिल जाए
जिसकी उपस्थिति से
दिन थोड़ा आसान लगने लगे,
और अनुपस्थिति में
साँझ कुछ अधिक खाली,
तो समझ लेना
प्रेम किसी उत्सव की तरह नहीं आया,
वह धीरे-धीरे
तुम्हारी आदतों में उतर गया है,

तुम्हारी प्रार्थनाओं में शामिल हो गया है,
और तुम्हारे भीतर
एक शांत, स्थिर जगह बना चुका है,
जहाँ लौटकर
मन को घर जैसा लगता है।

बबिता कुमावत

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
शुक्रवार, 19 जून 2026

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

विश्वगुरु हिंदुस्तान

उसे पता है कि, वह कानूनन किसी और की है,
उससे इश्ककर उसे अपना बनाना सही नहीं है,
मगर कोर्ट ने मान्य की लिव इन रिलेसन ब्रांड,
तभी हो रहे हैं पूरे देशभर में अद्भुत इश्क कांड,

अंधा ही नहीं, बहरा ही नहीं, लूला है, इस देश का कानून,!
भारत की ऋषि संस्कृति का विनाशक इस देश का कानून,!!

बाबा ने दायर किया था मुकदमा, बाबा मर गया,
मुकदमे को लड़ते लड़ते एक दिन बाप मर गया,
अब पोता बूढा हो रहा है, मुकदमे को लड़ते हुए,
पीढ़ियां बदल रही कचहरी की सीढ़ियां चढ़ते हुए,

कितने धन की, समय की बर्बादी समझते क्यों नहीं मीलार्ड,!
सत्य तो यह है इस धरती में जन्मे हुए लगते ही नहीं मीलॉर्ड!!

अभिभावकों को अपने बच्चो का भविष्य ज्ञात है,
उनकी औलादें बेरोजगार ही बनेगी उनको ज्ञात है,
व्यर्थ हैरान करते प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों को,
अब केवल सौरिकक्ष कार्य देना बचा शिक्षकों को,

प्राथमिक शिक्षा को नष्ट करके दम लेंगे विभाग अधिकारी,!
सच पूंछो तो ग्रामीण परिवेश से अनभिज्ञ शिक्षा अधिकारी,!!

किस विधायक को नहीं ज्ञात रुग्णता अस्पतालों की,
किस मंत्री की दृष्टि में नहीं अव्यवस्था अस्पतालो की,
सभी सरकारी चिकित्सक प्राइवेट चिकित्सा करते है,
इन्ही की वजह से प्राइवेट अस्पताल फूलते फलते हैं,

दीवार पर अच्छे से लिखा पढ़ो स्वच्छ भारत स्वस्थ भारत,!
वीमार चिकित्सा विधान ढ़ो रहा स्वच्छ भारत स्वस्थ भारत,!!

सरकारी स्कूल,कालेज रोते कम छात्र संख्या का रोना,
कोचिंग सेंटरों में भीड़ से ठसाठस है कक्ष का हर कोना,
कोचिंग सेंटरों में बिना शुल्क उपलब्ध प्यार की सुविधा,
बस एक ही कमी इनमें जो नहीं प्रणय सेज की सुविधा,

यह पांच पद्य नहीं, इनमें साफ दर्शन कीजिये हिंदुस्तान का,!
अब तो भगवान ही जाने क्या होगा विश्वगुरु हिंदुस्तान का,!!

श्रवण कुमार पाण्डेय
पथिक

आँख में ठहरा हुआ जल

आँख में ठहरा हुआ जल देखिए तो,
जिंदगी की हर कहानी कह रहा है।
आवरण-नैपथ्य के हर दृश्य में यह,
यवनिका सा बन सदा से रह रहा है।

कुछ बही-खाते बड़े ही गुप्त हैं,
दर्ज हैं जिन पर नुकीले दिन गए।
चक्रवृद्धि ब्याज पर जो ले लिए थे,
वो सितारे भर दुपहरी छिन गए।
कर रहा गणना उसी की सामने हो,
इसलिए यह निश्छली निस्पृह रहा है।

प्रस्तरों पर जो अमिट न रह सका वो,
अधमुंदे पलकों की पीड़ा में लिखा।
मेघ धो कर ले गया जिस पृष्ठ को,
वो नयन की मुग्ध क्रीड़ा में दिखा।
बूंदभर के इस समुन्दर में रुका,
धड़कनों का युग समूचा बह रहा है।

यह नदी में भी मरुस्थल सा जला है,
और मरुथल में सुवासित हो खिला।
निर्झरों सा गुनगुनाया है पलक पर,
यह अधर पर मुस्कुराता सा मिला।
यह समय की पारदर्शी थप्पियों में,
एक झीनी सी सुकोमल तह रहा है।

गौर करना झिलमिलाता है कभी जब,
जाने कितनी पंचवटियां हैं उभरती।
शुष्क होकर लुप्त जब-जब भी हुआ यह,
पाषाण बन कर के अहिल्याएं बिखरती।
कुछ लकीरों को बना प्राचीर अपना,
बांध की सीमा सुनिश्चित सह रहा है।

छू लिया जब कल्पना की चाँदनी को,
कुछ सुरीले गीत गाता आ गया।
बस्तियों में जा अमावस की कभी,
कोर पर यह छलछलाता आ गया।
पार्श्व में जाकर परखना मत इसे,
पायोगे हिमखण्ड जैसा ढह रहा है।

चौ. मदन मोहन समर

स्त्री.....!

किस सीमा में बँधी हूँ मैं,
न जाने किसके लिए जीती हूँ,
शादी से पहले परिंदो सी उड़ती थी,
अब पिंजरें में दिन गिनती हूँ,
कहाँ कोई सपना अब अपना है,
कौन सी मंजिल मुझे पुकारती है?
अपनों कि खुदग़ार्ज आँखे,
अब राहों में कांटे बुहारती है।
कुर्बानी की वेदी पर जैसे,
हर रोज चढ़ जाती हूँ मैं,
सपनों को अपने कुचल-कुचल,
अपनों के सपने बुनती हूँ।
परिवार और मर्यादा का पहरा,
एक बंद द्वार सा मुझ पर है।
बीतते वक्त का हर एक कतरा,
घुटते दम का एक मंजर है।
पहचान कहीं खो जाती है,
रिश्तों का जाल गहरा है,
गुज़रते हर एक पल के साथ,
खाली हो जाती हूँ मैं।
सारे जज्बात को एक धागे से
उलझा पाती हूँ,
स्त्री हूँ मैं,. जो हर रोज यहाँ, एक
मूरत सी तराशी जाती हूँ।

रीतु जाजू

सियासत

कमज़ोर जितनी चाह होती है
दूर उतनी ही राह होती है

पंछी उड़ते हैं आसमानों में
पर ज़मीं पे निगाह होती है

आदमी रहता है ज़मी पे मगर
आसमानों की चाह होती है

जिंदगी बुलबुले सी इंसा की
आरज़ू बेपनाह होती है

दायरा ग़म का जितना लम्बा हो
उतनी लम्बी ही आह होती है

जो भी आता है ठहर जाता है
सियासत ऐशगाह होती है

कपिल कुमार
बेल्जियम

एक पिता

एक पिता
केवल हाड़ मज्जा का पिंड ही नहीं होता
वह सुखदायक और दुखनिवारक केंद्र बिंदु की एक इकाई भी होता है
वह देखता है
उसका घर किस दिशा में जा रहा है
बच्चे क्या समझ रहे है और क्या नहीं
पिता महसूस करता है समाज की समृद्ध संरचना को
कभी वह उससे निजात भी पा जाता है
और कभी उसके चक्रव्युह में फंस भी जाता है
वह सोचता है और कुछ बातों को समाज के ऊपर छोड़ देता है
और सोचता है समाज की दिशा और दशा को
एक पिता बच्चों पर डांटता डपटता है
लेकिन बच्चे उसे कोना समझ इग्नोर कर देते है
लेकिन जानते है कि उनका पिता ठीक है
लेकिन वे सोचना समझना ही नहीं चाहते

पिता उस बेंच की तरह होते है जहां बच्चे सीख सकते है
समाज की व्यवहारिकता
समाज का मायने
लेकिन वह अपनी युवा होती धुन में सवार रहता है
जिसे अपना चिंतन सोना लगता है और बाकी का सोचना कांसा
बहरहाल वक्त वक्त की बात है
जिसने जीवन के मायने समझ लिए वह तैराक बन गया
और जो समझ नहीं पाया
वह कतार में लग गया.....।

लालित्य ललित

पीड़ावस्था

जब कोई कविता
कवि के मन में
प्रसव-वेदना के लिए
छटपटाती है,
उसके अन्तर्मन की विकास यात्रा के बाद
तो उसके मस्तिष्क के तंतु
परम-पिता परमेश्वर से जुड़े होते हैं
कवि की
कोई जाति नहीं होती
उसका कोई मजहब नहीं होता
और उस पीड़ावस्था में
वह 'कबीरी राम ' का
सबसे बड़ा
करीबी होता है।

रविशंकर शुक्ल

ग़ज़ल

तुम जैसे, कुछ हम जैसे,
कभी खुशी,कुछ ग़म जैसे।

बूंद लबों पे अश्कों की,
गुल पे हो शबनम जैसे।

यार से होकर दूर लगा,
निकल गया हो दम जैसे।

साथ दुआ है मां की तो,
साथ है रब हरदम जैसे।

दीन, ईमान पे कायम जो,
लोग बचे हैं कम जैसे।

जय की ग़ज़ल दुआओं सी,
शेर सभी मरहम जैसे।

जयकृष्ण चांडक 'जय'
हरदा म प्र

"घर में एक नेता जरूरी है"

बहस को मोड़ने के लिए, एक नया पैंतरा ज़रूरी है
घर की संसद को चलाने को, एक नेता ज़रूरी है

काम कोई खुद न करे, बस दूसरों को हुक्म सुनाए
कुर्सी पर डटे रहने को, ऐसा एक चेहरा ज़रूरी है

वादे तो बहुत करे, मगर वक़्त पर भूल जाए
बजट का सच छुपाने को, कोई तो बड़ा दिलासा ज़रूरी है

चाय की टेबल पर जो हर रोज़ एक नया मोर्चा खोले
सियासत की उस गपशप के लिए, घर का वो 'मुखिया' ज़रूरी है

दफ़्तर की हो या मोहल्ले की, हर बात पर जो भाषण झाड़े
माहौल में थोड़ी रौनक बनाए रखने को, वो अंदाज़ ज़रूरी है

रूठे हुओं को मनाना और गैरों को भी अपना बताना
पारिवारिक 'गठबंधन' बचाने को, ये हुनर भी ज़रूरी है

दुनिया की उलझनों को हँस कर सँभाल लेता है 'शफ़क़'
पर घर के इस दंगल में, एक तजुर्बेकार नेता ज़रूरी है

सीए (डॉ.)गौतम कोठारी
डी.लिट.'शफ़क़'

ग़ज़ल

न जाने किस नये संसार में है।
ज़मीं से आसमां तक प्यार में है।

जवां दिल की यह उल्फ़त है,
मचाती सनसनी संसार में है।

किसी राजा किसी रानी सरीखी,
लुटी चाहत किसी दिलदार में है।

वो लूटेगा फ़क़त दुनिया की अस्मत,
उसे लगता किसी अवतार में है।

मिली है लाश ड्रम में पैक होकर,
ख़बर फ़िर आज के अख़बार में है।

बिखरता-टूटता मंज़र ये दुनिया का,
कमी शायद कुछ उसके प्यार में है।

वाई.वेद प्रकाश
रायबरेली (उत्तर प्रदेश)

क्यों सोचूं..?

बस, गुजर रही है जिंदगी
कैसे गुजरी ..?
वैसे गुजरी.. ऐसे गुजरी
बातें अब क्यों सोचूं..?

बस, गुजर रही है जिंदगी
अकेले हैं, तनहा है
खामोश क्यों है..?
यह सब बातें अब क्यों सोचूं..?

बस, गुजर रही है जिंदगी
सुबह हुई, दोपहर हुई
अब शाम हुई है जिंदगी
अब क्या होगा....?
यह सब बातें क्यों सोचूं..?

बस, गुजर रही है जिंदगी..।
उनको तो हम भूल गए हैं
जिनको हमें रखना है याद
व्यर्थ बातें क्यों सोचूं..?

बस, गुजर रही है जिंदगी।
अपने मन को समझाना है
अब दूर कहीं हमें जाना है
व्यर्थ की बातें अब क्यों सोचूं?

बस, गुजर रही है जिंदगी।
मन क्यों उदास-सा लगता है..?
घर क्यों पिंजर सा लगता है.?
पंछी बन उड़ जाने को
मन क्यों करता है..?

बस, गुजर ही रही है जिंदगी
बुढ़ापा नजर अंदाज क्यों है..?
इस बात पर नाराज क्यों है..?

यही तो है जिंदगी जो बस गुजर ही रही है
समझता नहीं है कुछ भी
फिर भी क्यों सब कुछ समझना है?

छोड़ो, समझाओ अपने मन को
कुछ भी नहीं समझना है
गुजर तो रही है जिंदगी
मन के आंगन में जिंदगी के दिन
टुकड़े बनकर बिखर रहे हैं
जैसे पानी की बूंदें बनकर सिमट रहे हैं
अब क्या जतन करुं..?

गुजर तो रही है जिंदगी
बेजार जिंदगी को प्रतीक्षा है तो किसकी..?
पलके बिछाए राहों में राह देख रही हैं किसकी..?

कौन जाने गुजर तो रही है जिंदगी
घर के कोने में पड़ा कोई सामान देख कर
यह एहसास होता है
शायद इंसान की जिंदगी का
यही आभास होता है

बस, गुजर रही है जिंदगी
इंसान की जिंदगी का अंत
इतना दर्द भरा क्यों होता है..?
सदैव खामोश रहने को
कोई इतना मजबूर क्यों होता है..?

बस गुजर रही है जिंदगी
भीतर में सूनापन भर गया है
समझ ना आए न जाने क्या खो गया है..?

सवालों में गिरी उम्रदराज मोहताज जिंदगी
जो बस गुजर ही रही है...!

प्रवीणा ठक्कर
नागपुर

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

ग़ज़ल

न जाने किस नये संसार में है।
ज़मीं से आसमां तक प्यार में है।

जवां दिल की यह उल्फ़त है,
मचाती सनसनी संसार में है।

किसी राजा किसी रानी सरीखी,
लुटी चाहत किसी दिलदार में है।

वो लूटेगा फ़क़त दुनिया की अस्मत,
उसे लगता किसी अवतार में है।

मिली है लाश ड्रम में पैक होकर,
ख़बर फ़िर आज के अख़बार में है।

बिखरता-टूटता मंज़र ये दुनिया का,
कमी शायद कुछ उसके प्यार में है।

वाई.वेद प्रकाश
रायबरेली (उत्तर प्रदेश)

"मैं उसे रोक लेना चाहती थी"....

मैं उसे रोक लेना चाहती थी,
एक पल के लिए ही सही,
गले से लगाकर,
आँखों में ठहरे आँसुओं के साथ,
लबों पर अनगिनत शिकायतें लिए।

मैं कहना चाहती थी उसे,
अपनी अधूरी उम्मीदों की कहानी,
अपनी तकलीफ़ों का बोझ,
अपने दर्द की ख़ामोशी,
अपनी उदासी का कारण,
अपने अकेलेपन की सिहरन,
और उन डर की परतें,
जो हर रात मुझे भीतर से तोड़ देती थीं।

मैं बस इतना चाहती थी कि
वो एक बार ठहर जाए,
मेरी ख़ामोशी को सुन ले,
मेरी आँखों को पढ़ ले।

मगर उसने मेरी चुप्पी को
मेरी रुख़्सती समझ लिया।

और फिर बड़े सहज स्वर में कहा...
"मैं तुम्हारे लिए कुछ नहीं कर सकता..."

इतना कहकर
उसने मेरा हाथ छोड़ दिया,
और मुझे जाने दिया।

उसे क्या पता था,
मैं जाना नहीं चाहती थी,
मैं तो बस एक बार
रोक ली जाना चाहती थी।

डॉ श्वेता अज़ल

सीप का अस्तित्व

संवेदनशील अस्तित्व का,
जग में कठिन निवास,
जब तक झुके स्वभाव से,
मिलता रहे प्रकाश।

धूप लगी संबंधों पर,
पिघले सारे नेह,
स्वत्व किंचित बोल उठा,
सूख गए सब मेह।

भीतर कच्चा घाव था,
ऊपर शांत ललाट,
लोग पढ़ सके ही नहीं,
नयनों की बरसात।

मन ने रेशम-सा बुना,
संबंधों का सम सारांश,
लौटे लेकिन हाथ में,
केवल क्षय और ध्वंस।

जबतक बहता जल रहा,
सबने भरा घटाय,
ठहरा तो हर घाट जैसे,
अपना पंथ बचाय।

कंधों पर संसार था,
अधरों ऊपर मौन,
भीतर टूटी बाँसुरी,
सुन पाया ना कौन।

पीड़ा की उस राख में,
दबी रही पहचान,
ज्यों ही चिनगारी जगी,
जल उठे सब मान।

अपनों के उत्सव तले,
जलता रहा पलाश,
सबने देखा रूप-रंग,
कोई न देखा पाश।

मन था जैसे सीप में,
बंद पड़ा आकाश,
जिसने खोला स्व को,
वही हुआ निर्वास।

संबंधों के वृक्ष पर,
टहनियों के प्रकार,
जड़ में किंतु दीमकों का,
पलता रहा संसार।

एक दर्पण लेकर घूमता,
रहा जीवन भर उपकार,
चेहरों की भीड़ में किंतु,
न पाया अपना संसार।

पीड़ा ने जो लिख दिया,
मिटा सका ना काल,
घावों की गहराइयों में,
छिपता रहा कंकाल।

अंत समय यह जानकर,
हँस दी मन की प्यास,
अपना केवल घाव था,
बाकी सब आभास।

अश्रु बन चले स्याही,
पीड़ा बनी इतिहास,
बह गया जो था सीप में,
हुआ तम का विनाश।

डॉ निवेदिता बाँदिल

बस्ती-बस्ती चौपालों पर मानसून की बातें

दिन दो दिन में आ जायेगा,
लगा रहे सब अटकल।
गर्मी में जलती धरती को,
मिल जायेगा दमकल।
जैसे मरुथल को बहलाए,
सर्द दून की बातें।
बस्ती-बस्ती चौपालों पर
मानसून की बातें।

अधनंगें से खेत खड़े हैं,
मेड़ें बनी लगोंटें।
कूप बनें ज्यों माँज धरे हों
आँगन खाली लोटे।
अब आया, अब आया पानी,
माह जून की बातें।
बस्ती-बस्ती चौपालों पर
मानसून की बातें।

ताक रहे सब पोखर सूखे,
धवल मेघों की ओर।
बरसातों की करे कल्पना,
मन के बावले मोर।

मेंढक करते मेंढकियों से,
हनीमून की बातें।
बस्ती-बस्ती चौपालों पर
मानसून की बातें।

गए बरस की उस झोली का,
बचा खुचा सब निबटा।
लेकिन पिछले सब कर्जों का,
मूल - सूद कब निबटा।
आशा के बादल के हिस्से,
नव-प्रसून की बातें।

बस्ती-बस्ती चौपालों पर,
मानसून की बातें।

हेमन्त बोर्डिया

योग: जीवन का संतुलन

सुबह की पहली किरण जब
आँखों की पलकें छूती है,
शरीर अकड़ा सा लगता है
मन बिखरा सा रहता है।

तब एक आसन,
एक गहरी साँस
बिखरे हुए टुकड़ों को
फिर से जोड़ देती है।

योग कोई कसरत नहीं
यह खुद से मिलना है।
भागती दुनिया में
एक पल ठहर जाना है।

रीढ़ जब सीधी होती है
तो इरादे भी सीधे हो जाते हैं।
साँस जब लय में आती है
तो विचार भी शांत हो जाते हैं।

तनाव की गाँठें
धीरे धीरे खुलती हैं
चिंता का बोझ
पसीने के साथ बह जाता है।

योग सिखाता है
गिरकर भी संभलना,
दर्द में भी मुस्कुराना,
खुद को माफ़ करना।

स्वस्थ तन की नींव पर
ही स्वस्थ मन टिकता है।
और जब मन स्वस्थ हो
तो जीवन उत्सव बन जाता है।

योग मंदिर नहीं जाता
वह खुद शरीर को
मंदिर बना देता है।
जहाँ हर साँस प्रार्थना है
और हर क्षण ध्यान।

अपनी जिंदगी में
योग को महत्व दें,,

भागती दौड़ती सी
जिंदगी को कुछ पल
आराम दें,

योग को अपनाएं
योग से नाता जोड़े,
तनाव और रोग पर
लगाम लगाओ,
योग अपनाओं
तन-मन में ताजगी लाओ

यह महज योग नहीं
अध्यात्म है जो
मानसिक और शारीरिक
संबंध को भावनात्मक रूप
आबंध करता है,,,,
योग करें,,,,,योग

मंजू सरावगी मंजरी
रायपुर छत्तीसगढ़

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

आँसू

कुछ संकोच के, कुछ मन की गहरी पीड़ा के,
उमड़ते हैं भाव मगर शब्दों में ढल नहीं पाते।
झलकना चाहते हैं आँखों से आँसू बनकर,
पर संकोच की दीवारों से निकल नहीं पाते।

कितने अजीब होते हैं ये आँसू,
दुःख में भी आँसू, सुख में भी आँसू।
खुशी को भी व्यक्त करते हैं आँसू,
पर कभी-कभी लाख चाहने पर भी
मोती बनकर बह नहीं पाते,
पलकों के किनारों पर आकर ठहर जाते हैं।

जब छोटी थी, हर छोटी-सी बात पर
आँसू छलक उठते थे।
माँ का आँचल अक्सर उनसे भीग जाया करता था।
बड़े प्यार से माँ पुचकारती,
मनपसंद चीज बनाकर मुझे चुप करवाती।

पास बैठी दादी अक्सर कहा करती थीं—

"अरी लड़की, क्यों इतनी कोमल बन रही हो?
आज तो हम सब हैं तेरे नखरे उठाने को,
पर कल जब ससुराल जाएगी,
तब छोटी-छोटी बातों पर आँसू बहाएगी
तो कैसे चलेगा?

वहाँ कौन पोंछेगा तेरे आँसू?
अपने आँसुओं को भीतर ही भीतर समेटना सीख ले,
उन्हें पीना सीख ले।

बिटिया, जीवन की राहें सरल नहीं होतीं,
बड़े होकर कितनी कठिनाइयाँ आएँगी।
कुछ बनने के लिए घर से दूर जाना पड़ेगा,
कभी हॉस्टल, कभी परदेस भी जाना पड़ेगा।

हर बात पर आँसू बहाओगी
तो संघर्षों का सामना कैसे कर पाओगी?
दुनिया कमजोर मन वालों को
अक्सर जीने कहाँ देती है।

याद रखो बेटी,
मुट्ठी भर नमक लेकर दुनिया चलती है।
अपने आँसू हर किसी को मत दिखाना,
अपने घर की हर बात जग में मत बताना।

कुछ दर्द अपने भीतर रखकर भी
मुस्कुराना सीखना पड़ता है,
जीवन की लंबी राहों में
कई बार स्वयं ही संभलना पड़ता है।"

तब दादी की बातें सुनकर
मन में बड़ी चिढ़ हुआ करती थी।
लगता था, भला आँसू भी कोई रोक सकता है क्या?
पर समय के साथ समझ आने लगा
कि दादी जीवन का पाठ पढ़ा रही थीं।

उम्र बढ़ने के साथ-साथ
आँसुओं को भी संकुचित करना पड़ा।
जब बहू बनी, पत्नी बनी, माँ बनी,
तब लगा दादी ने कितना सच कहा था—
जीवन हर बार आँसुओं को बहाने की अनुमति
नहीं देता,
कई बार उन्हें पीकर भी मुस्कुराना पड़ता है।

उम्र के साथ सीख लिया हमने
हर पीड़ा को मुस्कानों में छिपाना,
भीतर ही भीतर टूटकर भी
सबके सामने सहज नज़र आना।

पर सच तो यह भी है कि
आँसू कमजोरी नहीं होते।
ये तो मन की वह भाषा हैं
जिसे शब्द कभी कह नहीं पाते।

कभी आँखों के कोरों पर ठहर जाते हैं,
कभी तकिए को रातभर भिगो जाते हैं,
और कभी किसी अपने के कंधे पर गिरकर
मन का सारा बोझ हल्का कर जाते हैं।

अब समझ आता है दादी का कहना,
जीवन सचमुच सरल नहीं होता।
पर यह भी उतना ही सत्य है कि
हर आँसू दुःख का दर्पण नहीं होता।

कुछ आँसू गर्व के होते हैं,
कुछ प्रेम और सम्मान के।
कुछ बिछड़ने की पीड़ा के होते हैं,
तो कुछ मिलन के वरदान के।

कुछ आँसू तब भी छलकते हैं
जब संतान कोई उपलब्धि पाती है,
कुछ तब जब बरसों बाद
कोई अपनों से मिलने आता है।

इसलिए अब आँसुओं से कोई शिकायत
नहीं,
न ही उन्हें छिपाने की कोई जिद है।
ये तो जीवन के अनमोल मोती हैं,
जिनमें मन की सच्ची तस्वीर बसती है।

आँसू बहें या पलकों पर ठहर जाएँ,
दोनों ही मन का संदेश सुनाते हैं।
जो बात होंठों तक आकर रुक जाती है,
उसे ये खामोशी से कह जाते हैं।

आँसू सचमुच बड़े अनमोल होते हैं,
ये दिल के सबसे सच्चे हमराज़ होते हैं।

दादी की सीख भी अब समझ आती है,
और मन की सच्चाई भी।
हर जगह आँसू बहाना उचित नहीं,
पर हर आँसू छिपाना भी समझदारी नहीं।

कुछ आँसू साहस सिखाते हैं,
कुछ रिश्तों की गहराई बताते हैं।
और कुछ आँसू जीवन भर
मनुष्य होने का अर्थ समझाते हैं।

मंजू लोढ़ा

बालमन की खिड़की

बालमन की खिड़की खोलना चाहती हूं
बच्ची हूं बच्ची ही रहना चाहती हूं

जीवन पथ पर आगे बढ़ना चाहती हूं
कोई रोके-टोके न ऐसा खुला जहाँ चाहती हूं
कल-कल करती नदियों में मछलियों संग
खेलना चाहती हूं
धूल उड़ाती बैलगाड़ी में बैठना चाहती हूं
बाल मन की खिड़की ....

चाँद को छूना चाहती हूं
तारों को चूमना चाहती हूं
चाँदनी रात में घूमना चाहती हूं
बाल मन उड़ान पूरी करना चाहती हूं
बाल मन की खिड़की ....

झूले की गुदगुदी का एहसास करना चाहती हूं
मेले में खिल खिलाकर हँसना चाहती हूं
हर रिश्ते को खुल कर जीना चाहती हूं
गर्व से सिर ऊंचा करना चाहती हूं

बालमन की खिड़की ....

डॉ. राधा दुबे,
जबलपुर, मध्य प्रदेश

निंदा रस

दोहरी मानसिकता में जीते हैं हम

जब बात दूसरों की बुराई की हो
निंदा रस छक छककर पीते हैं हम
और जब बात अपनी हो
सात पर्दों में ढक ढककर रखते हैं हम
वाह! क्या कमाल करते हैं हम..

जब दूसरों की अच्छाई बतानी हो
नुक्ता चीनी निकालते हैं हम
और जब बात अपनी अच्छाई की हो
अतिश्योक्ति अलंकार का प्रयोग करते हैं हम
वाह..! क्या कमाल करते हैं हम

कुछ इस तरह ....
दोहरी मानसिकता में जीते हैं हम
पीठ पीछे सिर्फ चुगली करते हैं हम
मुंह में राम और बगल में छुरी रखते हैं हम
वाह ..! क्या कमाल करते हैं हम

शकुनि बन अपनों से ही चालें चलते हैं हम
हर बार गिरगिट की तरह रंग बदलते हैं हम
वाह ..! क्या कमाल करते हैं हम

कितनी दोहरी मानसिकता में जीते हैं हम..
अपना घर तो संभलता नहीं है
दूसरों के घर तांक झांक करते हैं हम
ओहो ..! कितनी पंचायत करते हैं हम
वाह ..! क्या कमाल करते हैं हम

कितनी दोहरी मानसिकता में जीते हैं हम
कितनी घटिया सोच का परिचय देते हैं हम
अनपढ़ों को भी मात दे देते हैं हम
वाह...! क्या कमाल करते हैं हम!

डॉ संगीता बिंदल

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

अस्थिर मन

मन का स्थिर रहना कठिन,
पल-पल अपना रंग बदलता।
कभी धूप बन हँसता खिलता,
कभी बादल बन आँख मसलता।

कभी गगन में उड़ता पंछी,
सपनों के संग दूर निकलता।
कभी किसी अनजानी चिंता से,
अपने ही भीतर सिमट मचलता।

क्षण में हर्ष का दीप जलाए,
क्षण में दुख का सागर भर दे।
एक लहर सी उठती भीतर,
जो जीवन का अर्थ बदल दे।

कभी अतीत की गलियों में,
चुपके-चुपके घूमने जाए।
कभी भविष्य के आँगन में,
अगणित आशाएँ बो जाए।

मन तो चंचल पवन सरिखा,
बहता जाए अविराम सदा।
जिसने इसकी गति को समझा,
पाया उसने सदा विश्राम।

नहीं रोकना इसकी धारा,
नहीं बाँधना इसके पंख।
बस साक्षी बन देखो इसको,
मिट जाएंगे सारे दंश।

मन का स्वभाव बदलना ही है,
यह प्रकृति का है सुंदर क्रम।
जो स्वीकार करे इस सच्चाई को,
उसके जीवन में "ऐ दविंदर" है संतुलन।

डॉ.दविंदर कौर होरा
इंदौर म.प्र

मेरे पिता श्री

पापा घर के ईष्ट
परिवार के श्रेष्ठ।

माँ का सुहाग
भाई का दुलार
बहन दिल में जान
बेटा बेटी नयनों के तारे
ऐसे पिताश्री हमारे||

आकाश की ऊंचाई
धरती की गहराई
सासों की छड़कन
हजारों लाख में एक
ऐसे पिताश्री नेक||

स्वभाव से धैर्यवान
सोच से परे विद्वान
समझ में शीलवान
शील शांत वैभवशाली
रहे पिताश्री से खुशहाली||

समाज में सम्मान
कुटुम्ब की रखे शान
खुशियों का खजाना
हर वादे को पूरा करते
ऐसे है पिताश्री हमारे||

पिता का अभिमान
पूजे जैसे भगवान्
सदा रहे आ न शान
पिता से बढ़कर
कोई ना दूजा
नहीं कोई जग में पिताश्री जैसा

ऊषा प्रदीप नौगरहिया
कटनी

अमिय धार बनके आई

धूप गुनगुनी थी तभी वो, फुहार बन के आई,
मुझसे मिलने सधे कदम, बहार बनके आई।

अपनेपन की लिए तपिश, शीतल से की संधि,
रिश्तों का वो एक नया, अलंकार बनके आई।

ख्वाब जी उठे गुलाबी, कुछ नया एहसास लिये,
खुली आँखों में स्वप्न का, विस्तार बनके आई।

अपार स्नेह की बारिश में, भीगा है तन-बदन,
रहे हृदय सदा ये नम, अमिय धार बनके आई।

जहाँ धरने को मचले कदम, ज्ञान और कुबेर,
घर-द्वार का वो 'प्रदीप', वंदनवार बनके आई।

प्रदीप कुमार अरोरा, पुणे

मस्तानी रुत

सावन की मस्तानी रुत है, रिमझिम बदरा बरसे।
जल्दी से घर आजा साजन, नैन दरस को तरसें।

दादुर मोर पपीहा नाचे, कोयल पिऊ-पिऊ गाए।
ऐसे में बेदर्द बालमा, तेरी याद सताए।

चल दोनों बरखा में भीगें थाम हाथ में हाथ।
अंजुरी में कुछ बूँदे भरकर, लाएँ अपने साथ।

द्रुम लतिकाएँ इस बारिश में झूम- झूम इतराएँ।
जल्दी से कर आ जा बालम, मौसम बीता जाए।

राधा गोयल
विकासपुरी, दिल्ली

पिता परमेश्वर

पिता... पिता होता है,
जो हमारे सुनहरे
सपनों के बीज बोता है।

सींचकर अपने खून-पसीने से आँगन को,
बस अपनी संतति की
खुशी में खुश होता है।

दफन कर देता है जो अपनी
तमाम आकांक्षाओं को,
आँखों में सिर्फ संतान के
सपने संजोता है।

बाहर से सख्त
भीतर से कोमल होता है
प्रसन्न दिखता है भीड़ में,
अकेले में रोता है।

वह संघर्ष करता है
चमत्कार नहीं कर सकता
पिता "पिता" होता है
परमेश्वर नहीं हो सकता।

कीर्ति प्रदीप वर्मा

बारिश

बारिश की बूँदों का, न रंग है न रूप,
पर धरती पर पड़ते ही, बुझाती है प्यास धरा की,
भर जाती है रंग धरती पर हरा, छाती है हरियाली,
चारों ओर सुंदर हरियाली मन को भाती!

रिमझिम बारिश की फुहारें, मन को रिझाती,
आनंदित हो मन, झूम उठता है,
मोर भी अपने पंख फैला, नाच उठता है!

अनोखी छटा लिए, धरती की गोद भरी,
हल्की सी धूप और बारिश की बूँदों के साथ,
आसमाँ भी ख़ुश हो इंद्रधनुष के रंग बिखेर जाता है!

धरती अम्बर का मिलन अनोखा होता,
धरा की प्यास बुझा, झूम झूम बरसता है,
आनंदित हो धरा भी, रंग बिरंगे फूलों से महक उठती है!

अदिति रूसिया
वारासिवनी

जिंदगी, अब तू मुझको पढ़

जिंदगी बहुत पढ़ लिया तुझको अब तक,
अब तेरी पारी है, अब तू मुझको पढ़।

हर मोड़ पे चुपचाप जो सहता आया हूं,
मेरे भीतर के अधूरे टूटे सपनों को पढ़।

कभी अश्कों में ढली, कभी हँसी में छिपी,
मेरे चेहरे की हर इक लकीर को पढ़।

जो अपनों की खातिर खुद को भूल गया,
उस टूटते हुए दिल की पीर को पढ़।

तूने हर बार मुझे ही परखा है मगर,
अब मेरे धैर्य की गहराई को पढ़।

मैं खामोश सही, पर पत्थर तो नहीं,
मेरे जज़्बातों की सच्चाई को पढ़।

जिंदगी बहुत पढ़ लिया तुझको अब तक,
अब मेरी पारी है, अब तू मुझको पढ़।।

वीणा खंडेलवाल
तुमसर महाराष्ट्र

पीड़ा को आसूँ बनकर निकलना होगा

जाने कितना कुछ सह जाते हैं
मौन अधरों से भाव बुदबुदाते हैं
कुछ पन्नों में उकेरे चले जाते हैं
कुछ गीत विरह के बन पाते हैं
कुछ चाहकर कुछ बिना चाहे जीना होगा
पीड़ा को आसूँ बनकर निकलना होगा

नभ में बदली जब जब छाती है
कुछ बिना बरसे ही चली जाती है
तेज हवा के झोंके कुछ उड़ा ले जाते हैं
कुछ मायूस स्वर विदा हो चले जाते हैं
दुख के पल को सुखमय करना होगा
पीड़ा को आसूँ बनकर निकलना होगा

वंदना सिंह 'त्वरित'

लेखक का मन

एक लेखक का मन
दर्पण सा होना चाहिए
लेखनी से हृदय के
भाव, सत्य की पुकार
और मन का उद्गार
कागज पर उतरना चाहिए

कलम में इतनी धार हो
कि हृदय को झकझोर दे
ऐसा विचार होना चाहिए
सभी वर्ग, जाति, धर्म
से भेदभाव किए बगैर
कलम में समानता का
भाव होना चाहिए

समाज हित, राष्ट्र हित
या विश्व के हित की
भी बात होनी चाहिए
भाव, विचार और
व्यवहार में संयम
शिष्टाचार और
सदाचार होना चाहिए

सच को सच और
झूठ को झूठ कहने का
माद्दा भी होना चाहिए
तभी लेखक की
लेखनी के दम पर
समाज में बदलाव
आएगा, सुधार आएगा।

डॉ. पल्लवी "गुंजन "

फेसबुक की दुनिया

बँटवारे तो तब भी हुआ करते थे,
जब फेसबुक और व्हाट्सएप नहीं थे।
तो फिर डूब कर भी इसमें लोगों ने,
सोशल मीडिया को बदनाम कर दिया।

रिश्ते तो तब भी बिखरा करते थे,
जब सब मिल कर रहते थे।
वरना इस दुनिया में लोग
खुशियों से जलकर अपनों से ही
यूँ मुँह फेर न लेते।

कितने भी धोखे-दर्द रहें,
गहरे-से-गहरे रिश्तों में भी।
इस फेसबुक के जरिये,
हम उनसे आज भी मिलते हैं।

अगर रिश्ता बस अपनों से रखना होता,
तो यह दुनिया चल ही नहीं पाती।
फिर तो हमें उन चार लोगों से ही,
रिश्ते खुद्दारी से निभाने होते।
जो अंत समय ढोकर कंधे पर,
श्मशान तक भस्म करने को ले जाते।

हम इस भीड़ में भी रहकर,
दुश्मनों से मारकाट न करते।
कुछ बोले बिना ही अहितों को,
अमित्र या ब्लॉक कर देते।

फेसबुक की दुनिया के लोगों पर तो हम,
कोई एहसान नहीं करते।
बस लाईक, कमेंट्स के बदले,
लाईक, कमेंट्स कर देते।

जो कोसते हैं सबसे ज्यादा,
वही इसमें तल्लीन रहते हैं,
औरों को देख खुश इस पर,
क्यों खुद ही खिन्न रहते हैं।

आकांक्षा प्रिया

कोई कामना नहीं

नहीं संजो रखा है मैंने दिल में कोई आदर्श
कोई पसंदीदा कामना नहीं
लेकिन देता हूं मैं बधाई
उन सभी सोई हुई आत्माओं को जो जागती हैं
जब उगता है सूरज पूरब में
करने के लिए कैदियों को स्वतंत्र मारकर रात्रि के राक्षस को।

नहीं है उम्मीद मुझे किसी पुरस्कार की
कोई बड़ी चाहत नहीं
लेकिन करता हूं मैं प्रशंसा
सभी संघर्ष करने वालों की ठानी है जिन्होंने
लड़ने और जीत हासिल करने की उन बदमाशों के खिलाफ
नकारते हैं जो
बिना पछतावा के उनके प्रतिष्ठा के साथ जीने का अधिकार।

नहीं करता मैं आशा किसी क्षणिक प्रसिद्धि की
ले जाएं वे सभी
मेरी सारी संपत्ति
नहीं केवल बड़े प्रयास से अर्जित मेरी दुनियावी प्राप्ति
बल्कि मेरा स्वाभिमान भी
रखता हूँ जो व्यर्थ में मैं अपने पास
और कर दे मुझे मुक्त मेरे सारे दुख से भी
है जो समझदार होने के कारण।

नहीं है पसंद मुझे
लिखता हूं मैं जो कविताएं
क्योंकि होती है कमी उनमें
वह कला जो करते हैं प्रदर्शित महान कवि कला के लिए
लेकिन बजाता हूं मैं तालियां
जब सुनाता है कोई कविता सत्ता के खिलाफ
और गूंजती है हर तरफ उसकी क्रुद्ध आवाज़।

उठने दो चांद को ऊंचा और ऊंचा
उपेक्षा कर बीमार गुलाबों के जीवित रहने की ललक
करते हुए प्रतिरोध समय के कीड़े का
मुझे तो है प्यार बीमार मानव-जाति से
है नहीं आवश्यकता मुझे ढूंढने की आसमान में ईश्वर, या धरती पर कोई देवता।

डॉ प्रभात कुमार

चिंतन

दिखें राहें कई सारी, बढ़ाती उलझने मेरी।
पकड़ लूँ एक ही रस्ता,करूँ बिल्कुल नहीं देरी।
समय भी बीतता जाता, नहीं मैं अब रहा बच्चा।
अकेले ही मुझे चलना, पकड़ लूँ राह जो सच्चा।।

नहीं विश्वास को तोड़ूँ, लगन अपनी नहीं छोड़ूँ।
कदम अपने बढ़ाऊंगा, न मुख अपना कभी मोड़ूँ।।
सभी सपने सजाऊंगा, निकल व्यूह से दिखाऊंगा।
परिश्रम से नहीं डरना, यही सबको सिखाऊंगा।।

कई राहें भले दिखती, मगर बस एक में चलना।
इरादे कर लिए पक्के, इरादों में हमें ढ़लना।।
हुए नाकाम यदि हम तो, नहीं मन से कभी हारें।
खुली हैं और भी राहें, 'किरण' क्यों हम न स्वीकारें।?

रश्मि शुक्ला 'किरण'

मेरा संसार

जब गली में मोहब्बत की चलती रही,
ज़िंदगी भी ख़ुशी में फुदकती रही।

मेरे दिल की तमन्नाओं में ज्वार था,
खुशनुमा लग रहा मेरा संसार था।
जब चली वो बहारों की ठंडी हवा,
ख्वाहिशें दिल में मेरे मचलती रहीं!

इश्क़ में जितना मिलता है लगता है कम,
प्यार की ये नदी क्यूँ न भरती कभी?
वो पिलाते रहे जाम आँखों से जब,
तिश्नगी आँख की और बढ़ती रही!

इस ज़माने के आशिक़ सुनो तुम ज़रा,
हमने देखी है इक दौर-ए-दीवानगी!
साथ हम थे, मोहब्बत थी, थी मस्तियाँ,
चाँदनी रात भी ख़ुद बहकती रही!

इश्क़ इसको कहूँ या कहूँ हादसा,
देके खुशियाँ ये देता है क्यूँ इतने दर्द?
दिल ये टूटा मेरा वो गई रुठकर,
दामिनी दिल में हर पल चमकती रही!

क्या कोई चीज़ ठहरी नहीं उम्र भर,
ख़त्म होता सुहाना हर इक दौर है!
छोड़कर दूर मुझसे हुई बेवफ़ा,
'अब्र' बस आँख मेरी बरसती रही!

अजय कुमार मिश्र

आवाज़ें मरती नहीं

मैं अपने सभी खोजी मित्रों से कहता हूँ—
तुम मेरी कभी तलाश मत करना।

मैं कहीं गाँव की खुर्दरी ज़मीन पर
मिल ही जाऊँगा,
उखड़े हुए विकास की ईंटों पर
जमे लहू के किसी धब्बे की तरह।

मैं उजड़ते पहाड़ों की दरारों में,
खनन की अँधेरी सुरंगों के भीतर
दबे किसी मज़दूर की आवाज़ बनकर
गूँजता मिलूँगा।

मैं कहीं चिपको आन्दोलन के बाद
कटे हुए पेड़ों की जड़ों में
पानी उँडेलता दिखाई दूँगा,
और मेरे दूसरी ओर
विशाल मशीनें
उन्हीं जड़ों के साथ
मुझे भी उखाड़ती हुई मिलेंगी।

यदि कोई किसान
अपनी फसल लुट जाने के बाद
ज़मीनी लुटेरों से लड़ते-लड़ते
हताशा की धूप में मुरझाने लगे,
तो वहाँ मैं
उसकी उम्मीदों को सींचता हुआ
नज़र आऊँगा।

मैं वहाँ भी मिलूँगा
जहाँ नदी का रास्ता रोका जा रहा होगा,
जहाँ जंगल अपनी आख़िरी हरियाली बचाने में
जुटे होंगे,
और जहाँ आदमी
अपने आदमी होने की लड़ाई लड़ रहा होगा।

फिर भी यदि तुम्हारी तलाश
मुझे वहाँ न ढूँढ़ पाए,
तो मेरे गीतों में उतरना,
मेरी कविताओं में मुझे पुकारना,
मेरी कहानियों के पन्ने पलटना।

शब्दों के बीच कहीं,
किसी अधूरी पंक्ति में,
किसी बेचैन विराम के पास,
मैं अब भी साँस लेता हुआ मिलूँगा।

क्योंकि मैं कोई व्यक्ति नहीं,
अपने समय की बेचैन आवाज़ हूँ—
और आवाज़ें
मरती नहीं,
बस लोगों के भीतर
घर बदल लेती हैं।

मुकेश सिंह "परिंदा"
चुनार, मिर्ज़ापुर (यू.पी.)

पीटना लकीर का

सांप के डसने से पहले
उसे पकड़ना या खदेड़ना
मुश्किल ही रहता है निज़ाम के लिए
बनिस्बत उसके जाने के बाद
महज़ उसकी लकीर को बेतहाशा पीटना।
फन उठाये सांप को ललकारना
बस में नहीं होता सभी के,
सिर्फ खुद शिकार के लिए ही नहीं
बल्कि पूरे समाज, सरकार
और उसके बिठाये चौकीदार के लिए।
तमाशबीन भी, जिनका जिम्मा रहता है
खबरदार करना समाज को, सरकार को,
उसके बिठाये बंद्रूकधारी-चौकीदार को,
बस चुप रहते हैं आँखों पे पट्टी बांधे
सब कुछ देखते-समझते।
सांप के डस कर निकल जाने पर ही
साथ मिल कर, ब-दस्तूर,
सभी तमाशबीन शोर मचाते हैं
तभी निज़ाम भी जागता है नींद से,
चौकीदार भागते हैं लाठी-बंदूक लेकर
और पीटते हैं लकीर को सब मिलकर।
निज़ाम को घेरना, चौकीदार को लताड़ना
सांप की पुश्तें खंगालना
एक-दूसरे पे इल्ज़ाम मढ़ना
कितना आसान होता है
लकीर का यूं पीटना।
सांप का डसा जब गिनता है सांसें
अस्पताल में पड़ा
निज़ाम जाता है मिज़ाज-पुर्सी के लिए
मुआवज़े का गुलदस्ता लिए
और फिर कुर्सियों पे बैठे अंदर
या खुले में जो खड़े
कुर्सियों के इंतज़ार में
चीखते हैं दोनों मिलकर
एक दूसरे पे बद-इंतेज़ामी के हवाले से
या बद-नियती के ही सवाल पे
कोसते हुए, सुविधानुसार,
सांप को या फिर चौकीदार को
और तमाशबीन अब अपनी दूरबीनों के साथ,
भोपू पकड़े, तप्सरा करते फिरते हैं
इस अनोखे निज़ाम में
जहां घर में घुसते सांपों को कोई नहीं रोकता
बस अपनी-अपनी लाठी लिए
सब तैयार रहते हैं लकीर को ही पीटने।

बिमल सहगल

यादें

यादें.......!
बौद्धिक क्षमताओं से युक्त
मानव मष्तिष्क में
पूर्व संचित अनुभव,
कुछ संवेदी
कुछ अल्पकालिक
कुछ दीर्घकालिक
सबका अपना अस्तित्व...
प्रज्ञा के संवर्द्धन हेतु
अति आवश्यक,
उभर आती हैं अक्सर
बन एकांत सखियाँ
कुछ संदली सी
सुवासित करें जीवन
सुखद अहसास से युक्त
कुछ कैक्टस सी
बेधतीं तन-मन
हृदय होना चाहे मुक्त,
इन्हीं स्मृतियों में
घुला रहता है जीवन
आजीवन..............।

डॉ. नीता सुशील अग्रवाल
पूरनपुर (पीलीभीत), उत्तरप्रदेश

मरासिम

सहरा पे बूँदें बरसाने लगे हैं,
वो ख़्वाबों में आने-जाने लगे हैं।

रगों में जो दौड़ते थे बन के लहू,
नज़रों से क्या उतरे कि बेगाने लगे हैं।

यूँ नहीं कि उनसे मरासिम नहीं थे कभी,
वक़्त गुज़रा कि वो ख़ज़ाने लगे हैं।

आसमाँ की रंगत बदली तो मानी बदले,
किस्से जो हक़ीक़त थे, अफ़साने लगे हैं।

मैं तो बस इक बहता हुआ दरिया हूँ,
दर्द आकर दिए सिराने लगे हैं।

सोचा था ग़म तो वफ़ादार होंगे मगर,
उनके दिए ज़ख़्म भी मुरझाने लगे हैं।

दिल है कि कोई भूला-बिसरा सा महल,
पल-पल गहराते साये डराने लगे हैं।

जब से उतरा है रंग-ओ-नूर, कंवल,
लोग अपने भी कतराने लगे हैं।

कमलेश कंवल, उज्जैन

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

एहसास

कुछ नए एहसासो से मिल
ताल पर थिरकने लगे है

सांझ पहर खुद के संग
हवाओ से मिलने लगे है

है नज़र में और असर भी
ख्वाब यूँ भी चहकने लगे है

आहिस्ता ही जब बढ़े सफर में
खुद से तालुकात बढ़ने लगे है ..

ख़ामोशी से सब देखते दूर से
तमाशा होने से बचने लगे है ...

तमाम खुशियों पे लगी नज़र
एहसासो को समेटने लगे है ..

मनचली तो नहीं लापरवाह हूँ..
ऐसा नहीं कि बिखरने लगे है ....

कि बाँधा है खुद से खुद को ऐसे
मन के फेरे से खुद ही बंधने लगे है ..!!
मेरी रूह

नंदिता तनुजा
लखनऊ

महफ़िल

ज़रा सी भी नमी दिखती नहीं है।
नदी क्या अब यहाँ रहती नहीं है।

ये कैसे खौफ में डूबे हुए सब,
वज़ह तो कुछ कहीं दिखती नहीं है।

वो अपने आप में खुश है बहुत ही,
कमी माज़ी की क्या खलती नहीं है?

पुराने हैं जो उनका बस यही गम,
हमारी कुछ अभी चलती नहीं है।

गुँथे हैं एक सच में झठ कितने,
खबर तो सच कभी उड़ती नहीं है।

सँभल कर बोलना रहता है सबको,
कभी दिल की कड़ी खुलती नहीं है।

पुराने दोस्तो!आवाज़ तो दो,
कभी महफ़िल कहीं सजती नहीं है।

निशा श्रीवास्तव,
नोयडा

प्रतिबिंबन

कुछ रिश्तों के दरमियान कोई ऐसा तालमेल नहीं होता जिसे शब्दों में बयां किया जा सके किन्तु फिर भी लगता है वे किसी वस्तु का दर्पण में बना प्रतिबिंब हैं। लावोनी और इशानी भी एक-दूसरे का प्रतिबिंब हैं। कोलकाता में इंजीनियरिंग कॉलेज में मुलाक़ात हुई थी और होस्टल मे एक ही कमरे में रहने से जल्द ही लवोनी को बड़ी बहन मिल गई थी इशानी के रूप में।
दोनों को पुरातत्व विभाग में असीम लगाव था इसलिये दिल्ली विश्वविद्यालय से भूगोल में मास्टर डिग्री के बाद यूपीएससी इंजीनियरिंग सेवा परीक्षा (ESE) की कोचिंग भी साथ में की।
ईश्वर ने भी उनके साथ को अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी थी तभी तो दोनों का चयन केन्द्रीय पुरातत्व विभाग (ASI) में डिप्टी सुपरिटेंडिंग सर्वेयर के लिए हो गया था।
मांडू के जहाज महल परिसर में तावेली महल में पुरातत्व संग्रहालय में पोस्टिंग हुई थी।
मांडू का इतिहास पढ़ने के बाद इशानी को इस जगह से खासा लगाव महसूस हुआ। लावोनी समझ रही थी वजह। मांडू के ज़र्रे-ज़र्रे में बिखरी उस दुखद किन्तु अमर, अधूरी प्रेम कहानी में वो मधुमति थी और अनिरबान था बाज बहादुर।
मालवा का अंतिम स्वतंत्र शासक था सुल्तान बाज बहादुर जो संगीत का बहुत बड़ा प्रेमी था।
शिकार के दौरान एक बार सारंगपुर के पास किसी की आवाज़ सुन वो होश खो बैठा और गाने वाली के करीब पहुँच गया जो किसी किसान की बेटी रुपमती थी। सौंदर्य और संगीत की जीती जागती प्रतिमा।
बाज बहादुर और रुपमति का प्रेम जब परवान चढ़ा, रुपमति की सुन्दरता के चर्चे मुगल सम्राट अकबर तक पहुँचे। रुपमती को हासिल करने के लिए उसने मालवा पर आक्रमण करवा दिया।
विशाल सेना का मुकाबला करना, बाज बहादुर की छोटी सेना के लिए असम्भव था और पराजित होकर बाज बहादुर जान बचाकर भाग गया।
जब अकबर का सेनापति आदम खान, रुपमती को बंदी बनाने मांडू पहुँचा तो रुपमती ने अपमान से बचने के लिए ज़हर पीकर अपने प्राण त्याग दिये और इस तरह उस प्रेम कहानी का अंत होकर भी वो इतिहास में अमर हो गई।
इशानी और अनिरबान की प्रेम कहानी का अंजाम भी कुछ ऐसा था। अनिरबान बी. ई. के बाद कोलकाता छोड़ कर विदेश चला गया और इशानी उसे कभी भुला नहीं सकी। अनिरबान का तो अर्थ ही है वह शाश्वत लौ जो कभी नहीं बुझती फिर इशानी के दिल में जल रही वो आग कैसे न धधकती रहती।
लाख कोशिशों के बावजूद लावोनी उसकी सोच को नहीं बदल सकी।
कुछ प्रतिबिंब स्मृतियों में इस तरह अंकित हो जाते हैं कि वह वस्तु न रहे फिर भी उसका बिम्ब कभी नहीं मिटता।
इशानी ने जैसे चाहत के लिए कोई तराज़ू तय कर ली थी जिसके एक पलड़े पर अनिरबान का प्यार रखा था और दूसरे पलड़े पर किसी की भी चाहत पलड़े को झुका नहीं पाती थी।
अपना काम पूरा कर जब लावोनी घर लौटी, इशानी नदारद थी।
वो जानती थी, कहाँ होगी इशानी।

हर रोज़ की तरह वो पहाड़ी की चोटी पर रुपमती के मंडप से रेवा की रजत धार को निहार रही होगी और अस्त होते सूरज में अनिरबान को तलाश रही होगी।
रेवा कुंड की सुन्दरता में वो अपनी उदासी और दर्द को घोल देती है।
अस्ताचलगामी सूरज जब नदी की धार में समाता है रुपमती का बाज बहादुर प्रतिबिम्बित हो उठता है रेवा की धार में और इशानी रुपमती बन भर लेती है अपने अनिरबान को बाज बहादुर मान कर।
शायद यही प्रतिबिंबन, इशानी की उम्मीद और विश्वास है......।

मुकेश दुबे

पापा

पापा का साथ होना मतलब...

जो चाहो, वो पा जाना,
प्यार से न मिले तो रुठ जाना।

ज़िद करना, रोना-रुलाना,
और फिर पापा का मेहनत करके
वो चीज़ दिला जाना।

किसी से न डरना,
हर बात पर पापा की धौंस दिखाना।

कोई गलती हो जाए तो
उनकी डाँट भी खा जाना।

रात को जब डर लगे,
उनके सीने से लग जाना।

हर मुश्किल का हल
बस उनसे पा जाना।

उनकी हिम्मत के सहारे
हर काम कर जाना।

अब ये सब एक सपना-सा लगता है,
सब कुछ है अपने पास,
फिर भी कुछ भी अपना नहीं लगता है।

पापा के बिना ज़िंदगी का आँगन
कितना सूना-सूना लगता है...

गुलशन प्रेम

तुम हो तो जीना अच्छा लगता है!

तुम हो तो हर दर्द सहना आसान है।
ग़म का हर साया भी अब तो मेहरबान है,
खुशियों के फूल राहों में खिल जाते हैं।
सपने भी हकीकत से मिलने आते हैं।
तुम हो तो जीना अच्छा लगता है।

तुम्हारी हंसी से महकते हैं दिल के कोने,
तुम्हारे बिना सूने लगते हैं ये घर-आँगन।
साथ तुम्हारा जैसे बारिश की पहली फुहार,
हर लम्हा तुमसे जुड़कर लगता है खास।
तुम हो तो जीना अच्छा लगता है।

तुम्हारा होना है जैसे उम्मीद का सवेरा,
तुम्हारी बातों में है एक नया सा बसेरा।
तुम्हारे बिना खाली खाली है सारा जहाँ,
तुम्हारे संग पूरा लगता है हर कारवाँ।
तुम हो तो जीना अच्छा लगता है।

हर धड़कन अब तुम्हारे गीत गाती है,
तुम्हारी मौजूदगी ही राहत दिलाती है।
जिंदगी अब कोई सवाल नहीं लगती,
तुम्हारे साथ हर राह सरल सी लगती।
तुम हो तो जीना अच्छा लगता है।

डॉ. प्रीति समकित सुराना

मन की पीर

पतझड़ के सूखे पत्ते सी प्रीत मन की पीर
कोई बेचैनी कोई कमी जैसे बिन रांझे के हीर

आज भी तुम धड़कनों में हो हां बस मेरे हो
एक उम्र गुजार दी टूटी ना मन की जंजीर

मुश्किल ये किसी चाहत को तो पाना ही नहीं
उतरकर आंखों की दहलीज से बहता है नीर

अनमने से बैठे सोचते हैं ये कैसा मंजर
ख्वाबों का दरिया अनकही सी तस्वीर

अल्फाजों में अक्सर जिक्र होता है तुम्हारा
दूरियां भी अपनी सी लगे यादों की हो तदबीर

हर भोर गुजरे किस पैगाम के मुंतज़िर
गया वक्त लौटता नहीं मनचाहे हो अधीर

तन्हा से सफर में खुद को संभालना भी है
ठहरी सी जिंदगी में हुए कुछ मस्त मलंग फकीर।

कविता नामदेव,
नजीबाबाद बिजनौर, उत्तर प्रदेश

जीवन -सार

मुस्कानों की छाँव रहे,
मन में रहे उजास,
छोटी-छोटी खुशियों से,
महके जीवन-वास।
हर प्रभात नव आशा लेकर
दे उत्साह अपार,
प्रेम, दया, विश्वास से,
भर जाए संसार।
पग-पग पर हो नेह की वर्षा,
मिटें सभी संताप,
अंतर्मन में दीप जले,
छँट जाए हर ताप।
जो भी मिले राह में अपने,
पाए स्नेहिल साथ,
सेवा, सद्भाव और करुणा,
बन जाएँ जीवन-पथ।
प्रभु-कृपा की शीतल छाया,
हर पल रहे समीप,
जीवन हो शुभ कर्ममय,
जगमग करता दीप।
मधुर वचन हों अधरों पर,
निर्मल हो व्यवहार,
अपनेपन की सुगंध से,
महके हर परिवार।
सुख में विनय, दुख में धैर्य,
हो जीवन का सार,
प्रेम सुधा से सींचते रहें,
अपना यह संसार।

डॉ संगीता बिंदल पुणे

आखिरी उम्मीद

जब चला जाऊँगा मैं
छोड़ जाऊँगा
कुछ किताबें
पुरानी पत्रिकाएं
लिखे-अधलिखे पन्ने
और उनपर लिखे
अस्पष्ट शब्द भी

मुझे मालूम है
नहीं पढ़ेंगे बच्चे
इनमें से कुछ भी
और एक दिन बेच देगी पत्नी
रद्दी के भाव

बची रहेगी बैंक पासबुक
और उसमें रखा एटीएम कॉर्ड
बची रहेगी एक डायरी भी
गोपनीय पिन तलाशने

और इसी बहाने
बचीं रहेंगी कुछ कविताएँ
बचूँगा मैं भी
इन कविताओं के साथ

बहुत जरूरी है
बचना कविताओं का
मेरे बचने की
आखिरी उम्मीद की तरह

विनय प्रकाश जैन
पुरानी शिवपुरी

कवायद

बात थोड़ी आपकी भाती तो है।
कुछ कवायद सच नज़रआती तो है।

क्या हुआ वो पेड़ जिस पर फल नहीं,
बैठकर कोयल वहाँ गाती तो है।

इस शहर से उस शहर को जोड़ने,
गाँव से होकर सड़क जाती तो है।

चाहतों का हो न हो चाहे असर,
देर मेंहदी रंग दिखलाती तो है।

हो भले ही चाँद बादल में छुपा,
आसमाँ पर रोशनी छाती तो है।

लाख उसको भूलने की सोच लें,
वो अदा फिर सामने आती तो है।

नवीन माथुर पंचोली

आकृतियां

एक मोमबत्ती
जलती हुई,
तिल-तिल कर पिघलती हुई,

ज़मीन पर गिरती हुई,
कुछ आकृतियां बनाती है।
थोड़ी देर में
उसका अस्तित्व
खत्म हो जाएगा,
धुएं की लकीर में बदल जाएगा,
वो जानती है।
फिर भी जलती है,
खुशी से दमकती है,
रोशनी करती है।

क्षणिकता में
अमरता का एहसास है,
तभी तो रोशनी उसके पास है।

डॉ अमृता शुक्ला

'निर्ममता की सीमा'

उसके सिर पर बाल नहीं थे
विग पहनना न था अपराध
बातचीत में भी सबल नहीं
पर था अपने घर का चिराग।

थीं उसमें कुछ कमजोरियां
फिर भी वह एक इंसान था
नेक स्वभाव और जिंदादिल
पर वह खतरे से अनजान था।

पापा की ये प्यारी परियाँ
अब क्यों बनने लगीं चुड़ैलें
सांप के जैसे डसने लगीं हैं
नफरत की ये जहरीली बेलें।

माँ-बाप का इसमें दोष नहीं
यह है कलियुग का परिवेश
एक खरबूजा बदल रहा है
अन्य युवाओं का भी भेष।

संस्कार इनको नहीं भाते
लज्जा भी नहीं बची शेष
बंधन सारे तोड़-ताड़ कर
अपने को समझें अखिलेश।

अगर मंगेतर नापसंद था
क्यों ले ली उसकी जान
बंधन तोड़ स्वतंत्र हो जाती
तो बच जाता वह नौजवान।

शन्नो अग्रवाल

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

प्रकृति की महिमा

सागर तट पर बसा हुआ है शहर बड़ा ही न्यारा,
इसी किनारे बना है मेरा छोटा सा घर प्यारा।

गगनचुंबी इमारतों का भव्य विराट स्वरूप,
मेरे घर का रोका है इसने ही उजियारा।

कई करोड़ों में बिकता है इसका एक फ्लोर,
इक गरीब के जीवन का हो जाए जिसमें गुज़ारा

मायूसी में ये भी मुझको अद्भुत सुख पहुंचाये,
नील गगन पर घने बादलों का अनुपम नज़ारा।

सागर की लहरें उठती है इठलाती बलखाती,
कभी अचानक मुझको भी दिख जाए ध्रुव तारा।

बड़ी नाव के एहसानों को कैसे कोई भुलाए,
आते जाते मुसाफ़िरों को जिसने पार उतारा।

हरे भरे घने पेड़ों की महिमा भी अति न्यारी,
इनकी सुख की छाँव में बहती अमृत धारा।

जल थल औ नभ की यारी है कितनी अनमोल,
आज्ञा चक्र में चला रहा है इनको कोई तारा।

सागर की लहरें जब जब इस तट से टकरायें,
हर पल बार बार समझाये ले ले कोई किनारा,

कमल भास्कर जालंधर

इंसानियत

हम रह रहे किस युग में, ये सोचना होगा।
होती रही क्या भूल, ये देखना होगा।। ।01।

इंसानियत कोसों हुआ दूर दिल से है।
हम आदमी हैं, सबको ये बोलना होगा।। ।02।

अपनों लड़ाई देख हैरान हर कोई।
यूँ बेवजह की दुश्मनी, रोकना होगा।। ।03।

जानें गंवाते चल रहे आज अपने ही।
भगवान् के दरबार में पूछना होगा।। ।04।

हारी हुई ये ज़िंदगी आज रोती है।
खुशियाँ मिले वो द्वार, तो खोलना होगा।। ।05।

बेमौत मरते दिख रहे हैं युवा अपने।
बचने-बचाने रास्ता ढूँढ़ना होगा।। ।06।

अजय पाण्डेय 'बेबस'

रोया होगा काल

रोया होगा काल,
जब भीषण अग्निकांड हुआ।
कैसे बिलखते हुए बच्चों ने
अपने प्राण त्यागे होंगे।

भारत की यह भीषण त्रासदी,
हृदय को चीर गई।
नन्हे-नन्हे किशोर
असमय ही काल के गाल में समा गए।

माता-पिता से पूछो,
उन पर क्या बीती होगी।
उस माँ का कलेजा फट गया होगा,
जिसने कभी लोरी सुनाकर
उन्हें सुलाया होगा।

दर्दभरा वह भयानक मंजर देखकर
माँ भारती का हृदय भी रो पड़ा।
तड़पते हुए बच्चों ने
प्राण त्याग दिए,
कोई भी सुरक्षित न बच सका।

यह कैसी विडंबना थी!
प्राणों की सुरक्षा का
पर्याप्त कोई इंतज़ाम न था।
बच्चे पढ़ने आए थे,
अपने भविष्य का निर्माण करने।

पर हाथ कुछ भी न लगा।
त्राहि-त्राहि करते हुए
उन्होंने भीतर ही दम तोड़ दिया।
तड़पते बच्चों का
वह दर्दनाक दृश्य
आज भी आँखों को भिगो देता है।

विकराल काल ने
मानो अपना मुँह खोल दिया था।
दहकती अग्नि की ऊँची-ऊँची लपटों के बीच
बचने की गुहार करते
वे मासूम बिलखते रहे।

जिनके बच्चे चले गए,
उनका क्या हाल होगा!
वे केवल उनके ही नहीं,
हम सबके बच्चे थे—
भारत माता के लाल।

हर बच्चा
हमारे अपने बच्चों के समान है।
हर माँ का हृदय चीत्कार कर रहा है।
जिसने नौ माह
उन्हें अपनी कोख में रखा,
वह यह पीड़ा
जीवन भर नहीं भूल पाएगी।

जिस लाल को जन्म दिया,
उसे जीते-जी फिर देख न पाएगी।
अग्नि की लपटों में
प्राण निकलना कितना कठिन होता होगा,
यह सोचकर भी मन काँप उठता है।

हे ईश्वर!
हमारे नौनिहालों की
सदैव रक्षा करना।
जो मासूम हमें छोड़कर चले गए,
उनकी पावन आत्माओं को
अपने श्रीचरणों में स्थान देना।

हमारे बस में अब कुछ नहीं।
हम श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं
और दिवंगत आत्माओं को
भावपूर्ण श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं।

डॉ. मीरा कनौजिया 'काव्यांशी'

कही–अनकही

सीधी सरल इक नारी थी,
मैं घर की राजकुमारी थी,
दुनिया के भारी मेले में,
न पड़ती किसी झमेले में।।

इस चालबाज दुनिया के भी,
कभी दांव पेंच ही न जाने,
कभी सोचा ना था फिर भी तो,
मिलते थे हरदम ही ताने।।

बिन सोचे समझे अपने में,
हरदम ही गलती मैं ढूंढू,
मन ही मन में युद्ध छिड़ा है,
कैसे अपने में सुधार करूं।।

इंसानी रंगों की फितरत,
मैंने तो देखो न समझी,
सबके इशारों पर चलकर,
अस्तित्वहीन सी आज खड़ी।।

साधना छिरोल्या
दमोह मध्य प्रदेश

मुक्ति

जैसे ही जीवन
को दृष्टा बनकर देखा,
अब तक जीवन की
सारी कड़वाहट,
सारे आँसू,
और खुशी के सभी पल
मानो दूर क्षितिज पर ठहर गए।

अनायास ही
मैं हर बंधन से मुक्त हो गई।

यह तर्पण भी था,
और मोक्ष भी।

अनुपमा शर्मा,
रुड़की

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

पीपल का पेड़

टीले के उस पार खड़ा,
वह पीपल का पेड़,

जिसकी पत्तियाँ
सुबह की रोशनी में
पारे-सी झिलमिलाती हैं,

नितांत अपना-सा लगता है।

जिसके सूखे,
लरजते पत्तों में
न जाने कितनी यादें छिपी
हैं।

यह पेड़
हमारी आस्था व विश्वास का
प्रतीक ही नहीं,

किसी बूढ़े, ज्ञानी,
तपस्वी-सा लगता है।

जिसने देखा है
पीढ़ियों को
जवान होते,
टूटते,
बिखरते।

उसने देखा है
वर्षा की नन्हीं बूँदों की
बौछार से,

आशा की लौ जगाती
नन्हीं कोंपलों को
जन्म लेते,

और फिर
लता बनकर
ऊपरी शाखों से
लिपटते हुए।

पंछियों के घरौंदों से झाँकती
जीवन की अंगड़ाइयाँ,

यहीं पर
जवान होती हैं।

न जाने कितनी
रहस्यमयी अनुभूतियाँ
पलती हैं
इसके दामन में।

इसने देखा है
सदियों को
पलों में सिमटते हुए।

ज़िंदगी के
टूटते संबंधों के बीच,

किसी मजबूत सहारे का
प्रतीक है,

पीपल का यह पेड़।

पद्मा मिश्रा जमशेदपुर

थाली का बैंगन

स्वाद बढ़ा देता है
थाली का बैंगन,
सब्जी के संग
मसालों में सना,
चटखारे जगाता हुआ।
पर हो जाता है अत्यन्त
कष्टदायी, अपाच्य
चला जाता है जब
लुढ़क कर यह
दूसरे की थाली में
साथ लेकर अपने
सारे चटखारे,
स्वाद और
सीक्रेट रेसिपी भी।

दिलीप आचार्य सोमेश्वर बांसवाड़ा राज

मेरा गाँव

मिट्टी की खुशबू में
बचपन मुस्कुराता है।

हमारा सेवराई गाँव
बड़ा प्यारा है।

मिट्टी की सोंधी खुशबू
मन में बसी है।

आज भी रोमांचित,
सुकून सजी है।

अमरइया की मदमाती
सुगंध से,

आज भी पुलकित
मेरा मन खिला है।

माँ कामाख्या का
सुंदर धाम।

संस्कृति-संस्कार का
संरक्षक हमारा गाँव है।

बाबा-ईया के साथ
ग्रीष्मावकाश बिताते।

स्टेशन काशी बैठते,
भदौरा स्टेशन उतरते।

चाचा जी हमारे
बैलगाड़ी लेकर आते।

मस्ती करते
हम सब भाई-बहन जाते।

गाँव में प्रवेश करते,
हाथी बँधा देखकर।

मन हर्षित,
गौरवान्वित हो जाता।

सुबह पगडंडी पर चलकर,
गाँव के मिडिल स्कूल पहुँच
जाते।

हमारा अभिन्न
सेवराई गाँव।

आज भी माँ काली कामाख्या,
ब्रह्म देव स्थान।।

प्रेम सिंह "काव्या" छत्तीसगढ़

हथेलियाँ

समय की मार, हुआ जीवन भार।
भयाक्रांत वर्तमान, चरमराता भविष्य।
भायं-भायं सन्नाटा, अस्तित्व बिलबिलाता।
कोई पास नहीं! वह भी नहीं,
जिसके लिए यह काँधा लाठी था।
इसी के सहारे जो खड़ा होता था!
टूटती लाठी देख सब भाग गये!

गहन तम, झंझा! वजूद को कँपकंपाते।
कुहा टपकते, शीत-लहर छीदते!
मस्तिष्क को एकछत्र जकड़ने लगे
नाउम्मीदी के मकड़जाल!

तभी, बिस्तर पर बेजान छितरायी
खाली हथेलियाँ हौले से कुनमुनायीं,
कि उसे सहलाता दशमी का टेढ़ा चाँद,
झिड़कता कह रहा था,

"पगली, हथेलियाँ खाली कहाँ होती हैं!
उसमें हौसलों की रेखाएँ खींचती रहती हैं!
अपनी अदम्य लालसा से वह
वक्त से टकराने का तेवर रखती है,
और, रोज जाने कितनी तकदीरें बदलती हैं!"

पूनम कतरियार

गणनात्मक दोहे

वेदांता - आचार्य कवि, विज्ञानी प्रथमेश।
विद्यादा है वंदना, गौरांगी रत्नेश।।

वासंती पद्मासना, वागीशा वरदान।
वेदांगी माँ!शारदे, आकांक्षा गुणगान।।

हरि गुण गायेंगे सदा, आयेंगे श्रीराम।
शुभ संचारी भावना, आशाओं के धाम।।

मायावी मारिच तृषा, संसारी भटकाव।
मोहाँगी अति पूतना, रूपाणी ठहराव।।

वैरागी भगवान शिव, संसारी के मीत।
संतापों के विष हरे, बाधाओं को जीत।।

कामाख्या हैं मंगला, मीनाक्षी अवतार।
शिव वामांगी पार्वती, गौरांगी जयकार।।

वासंती श्वेता सुधा, कांछानी सुख त्राण।
नौरूपा भवतारिणी, कल्याणी नव प्राण।।

पीड़ाओं की सर्जना, वागीशा आधार।
आशाओं की तूलिका, आभासी संचार।।

मायावी संसार में, ठग - बेताली व्याप्त।
सोचोगे अच्छा तभी, अच्छाई फल प्राप्त।।

आभासी दुनिया हुई, संबंधों से दूर।
संवादों से टूटते, खामोशी में चूर।।

संन्यासी शिव धारते, गंगानी को शीश।
आकांक्षी हरि संगिनी, पायेंगी अमरीश।।

अमितारवि दुबे
छत्तीसगढ़

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
मंगलवार, 30 जून 2026

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

दर्द या दिखावा

जिस पर बीतती वही जानता है,
दुनिया यह देखो, कहा मानती है।
सुना है यह वाक्य पंक्ति में मैंने,
पर दूसरे के लिए गलत जानती है।

अच्छी भली दिखती है,
क्या हुआ है तुझको?

ऐसे प्रश्नों की जब होती है बौछार,
तो मैं भी सोच में पड़ जाती हूं।
कैसे बायां करूं वो हाल अपना,
जब मैं खुद को भूल जाती हूं।

लाख जानती हूं कि अंत में यह दर्द,
हार मान लेगा।
पर जब वह होता है अर्श पर अपने,
मैं फर्श पर आ जाती हूं।

कुछ घंटों के असहनीय दर्द के बाद जब
खुद को थोड़ा ठीक पाती हूं,
जुट जाती हूं फिर एक बार,
खुद को खड़ा करना, सही जानती हूं।

लोगों का जुमला फिर वही,
"अच्छी भली दिख रही हो,
क्या हुआ था तुमको।"

फिर मुस्कुरा देती हूँ मैं भी,
क्योंकि यहाँ चेहरा ही प्रमाण है,
दर्द नहीं।

और शायद इस दुनिया में,
दर्द की भी एक शर्त होती है,
कि दिखना ज़रूरी है।

सोनम लड़ीवाला
जयपुर, राजस्थान

लौट आया

लौट आया
सब थकन, सब दर्द लेकर

सांझ के वे जादुई
कृष्ण गौ के घी सने सेंदुर रंगे
महमहाते दृश्य कैसे छूटते
आम्रमंजरियों में चहचहाते
छूटते वे स्वर कहां
गूंज जिनकी आत्मा तक जा धंसी है

और फिर वह याद जो फुनगियों में
सुर्ख लाली सी सजी है
कहां छोड़ूं उसे जो हर सांस में
मकोय की खुशबू सरीखी घुली है

लौट आया ठहरने को
चेतना की पंक्ति में जरूरी
एक अल्पविराम बनकर

लौट आया!
टूटी हुई पसलियों को हड़जोड़ देने
धमनियों में सांस भरने
लौटने को पुनः प्रातः
लौट आया।

संतोष कुमार द्विवेदी

इकलौती सखी

तुम
वो आवाज़ हो
जो भीड़ में भी अलग
पहचानी जाती हो

तुम
वो आलोक हो
जो दिनमणि के समान
तिमिर को हटा कर
पथ आलोकित करती हो

तुम
वो हाथ हो
कठिन परिस्थिति में
संघर्ष करते हुए
अपने मित्रों को गिरने पर
आगे बढ़ थाम लेती हो

तुम
प्रेम का
वो अक्षय भंडार हो
जो किसी के भी
अधरों की खोई मुस्कान
लौटा देती हो

जिसकी
तुम इकलौती सखी हो
उससे पूछना कभी
कैसे तुम्हारी
खनकती खिलखिलाहट
उसके दिन/माह/वर्ष बना देती है।

डॉ. भारती वर्मा बौड़ाई

प्रतीक्षारत

प्रतीक्षारत हैं कुछ कविताएं
कि परोसे जाएं उन्हें
भरपेट उल्लसित शब्द,..
प्रतीक्षा मुझे भी है
कि तय किया जाए
किसी दिवस
तुमसे मिलन का समारोह
और
मैं मन के जनवासे में
आमंत्रित कर कविताओं को
परोसूँ ...
भर भर उल्लास
और मीठी संतुष्टियाँ
मन मेरा भी चाहता है,
प्रफुल्लता के शीरे में
शब्दों को डुबोना
मुझे भी आता है।

बुशरा तबस्सुम

"बात-बेबात"

बात से शुरु हुई थी वो पहली मुलाकात,
बेबात ही दिल ने कर ली बात।
बातों में छुपे थे सारे जज़्बात,
बेबात ही आँखें कर बैठीं बरसात।

बात थी छोटी सी, पर असर गहरा था,
बेबात ही कोई अपना सा ठहरा था।
बातों के पुल पर रिश्ते बने थे,
बेबात ही शिकवे भी जुड़े थे।

राजनीति में देखो बात-बेबात का खेल,
बात विकास की, बेबात घोटालों की रेल।
बात जनता की, मंचों से चीखे,
बेबात ही वादे हवा में पके तीखे।

घर की छत टपके तो बात जरूरी है,
नेता आएँ तो बेबात मगरूरी है।
बात से बनते हैं घर और परिवार,
बेबात बिखरते रिश्ते हज़ार।

तो सुनो भैया, बात की कदर करो,
बेबात की आदत को जरा परे धरो।
बात से ही साहित्य सजता है,
बेबात में तो बस वक़्त कटता है।

आनंद पाण्डेय "केवल"

परिंदा

कोई राह का सफर कहाँ नया होता है,
कोई मुसाफिर, उस पर भी चला होता है।।(1)

जरा -सी आहट पे, चौक जाता है मेमना,
जंगल की आग में, सब जला होता है ।।(2)

जो खुद के साथ दूसरों को जला रहा,
वो सूरज शाम पहाड़ी पे ढला होता है ।।(3)

उन्हें काँटों का कहाँ से होगा एहसास,
जिनका पाँव संगमरमर पे चला होता है ।।(4)

"परिंदा" भूख के लिए तीरों से बेधा गया,
व्याधों का फैलाया दाना भी छला होता है।।(5)

मुकेश सिंह "परिंदा"
चुनार,मिर्ज़ापुर,(यू. पी .)